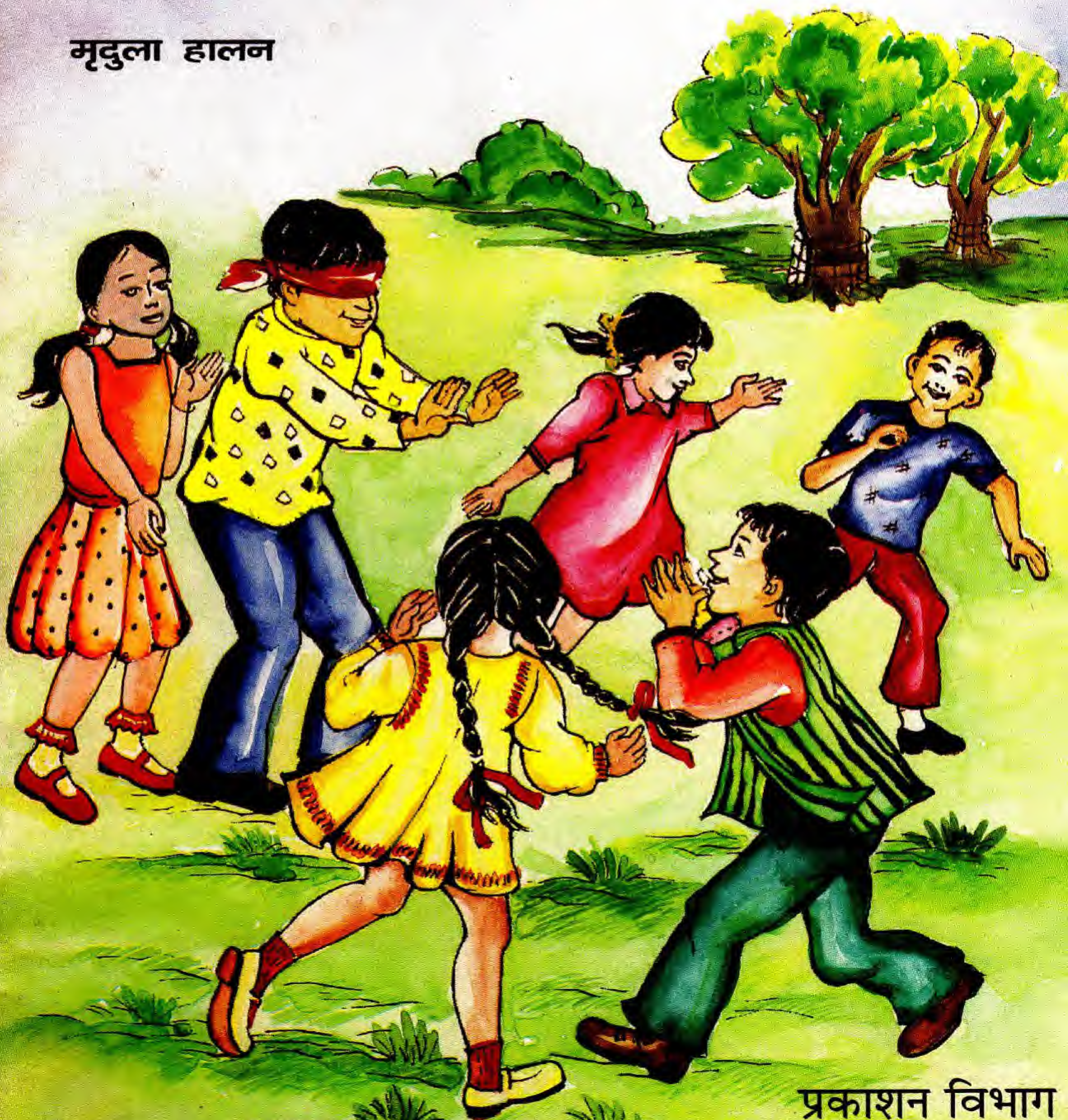
# छोटी आंखों का बड़ा सपना

मृदुला हालन



प्रकाशन विभाग

बालकथा-संग्रह

# छोटी आंखों का बड़ा सपना

मृदुला हालन



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

शक 1925 (2003)



ISBN : 81-230-1123-7

मूल्य : 40.00 रुपये

संपादन : **विभा जोशी;** आवरण : **अलका नय्यर;** रेखांकन : **सपन बिश्वास**

**निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, द्वारा प्रकाशित।**

**विक्रय केंद्र ● प्रकाशन विभाग**

- ☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 (फोन : 2338 7069)
- ☐ सूचना भवन, सीजीओ काम्प्लेक्स, नई दिल्ली-110003 (फोन : 2436 7260)
- ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (फोन : 2389 0205)
- ☐ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 (फोन : 2261 0081)
- ☐ 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (फोन : 2248 8030)
- ☐ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090 (फोन : 2491 7673)
- ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 (फोन : 2230 0096)
- ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 (फोन : 2330 650)
- ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226001 (फोन : 2208 004)
- ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034 ((फोन : 2553 7244)
- ☐ अंबिका काम्प्लेक्स, प्रथम तल, पालदी, अहमदाबाद-380007 (फोन : 2658 8669)
- ☐ नौजान रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-781001 (फोन : 2516 792)
- ☐ ब्लाक नं. 4, गृहकल्प काम्प्लेक्स, एम.जे. रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 ((फोन : 2460 5383)
- ☐ पीआईबी, 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 (फोन : 2556 350)
- ☐ पीआईबी, सीजीओ काम्प्लेक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर, (म.प्र.)(फोन : 2494 193)
- ☐ पीआईबी, बी-7/बी, भवानी सिंह मार्ग, जयपुर-302001 (फोन : 2384 483)

**वेबसाईट : www.publicationsdivision.nic.in**
**ई-मेल : dpd@sb.nic.in एवं dpd@hub.nic.in**

---

मुद्रक : तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002

# अनुक्रम

# छोटी आंखों का बड़ा सपना

"मालकिन! मैं अब चलूं? आप के घर में बिसबा (विश्वा) पढ़-लिख कर आदमी बन जाएगा। अपनी तो बेपढ़ी में बीत गई। जैसी हरि इच्छा!"

विश्वा को समझा-बुझा कर दीनू चला गया।

सदानन्द शर्मा! बैंक में मैंनेजर! सम्पन्न परिवार...पत्नी सीमा, दस साल की गीता और तेरह साल का अंकुर। गांव में सदानन्द के पिता की जमीनें हैं। धान, गेहूं, फल, सब्जी सभी कुछ होता है। सदानन्द सपरिवार गांव आता-जाता रहता है।

पिछली दफा गांव गए तो पिता ने सदा से कहा, "खेतों पर काम करने वाले दीनू की घरवाली मर गई है। आठ-नौ बरस का विश्वा बिन मां भटकता रहता है।...दीनू चाहता है कि बेटा पढ़-लिख जाए। तुम उसे अपने साथ ले जाओ।"

"मैं उसे ले जाऊं," सदा एकदम बोल उठा।

"पहले मेरी पूरी बात सुन लो," बोलते हुए पिता ने अपनी बात जारी रखी। "किसी की जिम्मेदारी लेना बहुत मुश्किल है। मैंने इस पर बहुत सोच-विचार किया है। इसे साथ ले जा कर तुम्हें पछताना नहीं पड़ेगा। सुबह स्कूल जाएगा...दोपहर बाद बहू का हाथ बंटाएगा। घर-गृहस्थी के छोटे-मोटे अनेक काम होते हैं। शहरों में भरोसे का आदमी मिलता कहां है? मैंने विश्वा को बचपन से देखा है। बहुत प्यारा और मेहनती बच्चा है। बहू प्यार से सिखाए तो घर का सारा काम सीख लेगा।"

सदानन्द कुछ कहता इससे पहले ही सीमा वहां आ गई, ''बाबूजी! मैंने आपकी सारी बात सुन ली। हम विश्वा को ले जाएंगे।''

पिता पुत्र दोनों चौंक गए। बाबूजी ने कहा, ''बहू! जल्दीबाजी में कोई फैसला मत करो। अच्छी तरह सोच-समझ लो।''

''बाबूजी! आपकी एक ही बात से मेरी दुविधा खत्म हो गई कि शहर में भरोसे के लड़के कहां मिलते हैं? इसके बाद सोचने के लिए कुछ रह ही नहीं जाता।''

सदानन्द परिवार शहर लौट आया। कुछ दिन बाद दीनू विश्वा को ले कर आ गया। सदानन्द के घर के अन्दर खुला आंगन, आंगन के अन्तिम छोर पर एक कमरा। विश्वा को वही कमरा मिला। खिड़की पिछवाड़े खुलती थी। विश्वा ने देखा, कमरे में छत का पंखा भी है। वह खुश था...उसका अलग कमरा, कमरे में छत वाला पंखा। गांव जाएगा तो सब दोस्तों को बताएगा।

घर के नजदीक सरकारी स्कूल में विश्वा का नाम लिखवा दिया गया। गांव के तौर-तरीके छोड़ने में विश्वा को थोड़ा समय लगा। फिर, जल्दी ही वह नए परिवेश में ढल गया। सीमा ने महसूस किया कि लड़का मेहनती है और ईमानदार भी। जो काम सिखाती, झट सीख लेता। गीता को तो दीदी ...दीदी...कहते नहीं थकता। गीता और अंकुर क्रिकेट खेलते तो वह दौड़ कर गेंद उठा लाता। पढ़ाई में भी उसकी पकड़ अच्छी थी।

विश्वा सब तरह से सन्तुष्ट था। बस, एक कमी उसे खलती। वह गांव, खेत, खलिहानों में पला था। यहां घर में न पेड़ न बगीचा। गांव में वह रोज पिता के साथ खेतों पर चला जाता था। उनके साथ हाथ बंटाता; मूली-गाजर उखाड़ता और उन्हें धो कर बड़े चाव से खाता। हरी-हरी मीठी मटर बेलों से तोड़ कर खाने का आनन्द ही कुछ और है।

एक दिन स्कूल में पर्यावरण के महत्व पर चर्चा हुई। टीचर ने बताया कि कम जगह के कारण गमलों में किस प्रकार फल-सब्जी लगाए जा सकते हैं और घर के पिछवाड़े में खाली पड़ी जमीन को कैसे उपयोगी बनाया जा सकता है।...

'मुझे पहले इसका ख्याल क्यों नहीं आया,' अपने कमरे की खिड़की में से बाहर देखते हुए विश्वा सोच रहा था। बाहर की जमीन झाड़-झंखाड़ से भरी थी। सोचते-सोचते उसके दिमाग में एक योजना ने आकार लिया। वह आंगन में आ कर चारों ओर देखने लगा। उसने देखा रसोई का पानी आंगन से गुजर कर पिछवाड़े के गटर में गिरता है। 'अब काम बन जाएगा।'...पीछे की जमीन साफ करके वहां सब्जी आदि उगाई जा सकती है। रसोई का पानी गटर में गिरने से पहले ही क्यारियों की तरफ मोड़ दूं तो सिंचाई की समस्या खत्म। उस ने मन ही मन पूरी योजना बना ली।

शाम को उसने सीमा से कहा, "अम्मीजी! मुझे कुछ चीजें चाहिएं। आप ला देंगी?" विश्वा को गांव से आए एक साल हो चुका था। उसकी जरूरतों का वह पूरा ध्यान रखती। बिना जरूरत के तो उसने आज तक कुछ नहीं मांगा, "स्कूल में कुछ मंगाया है?" सीमा ने विश्वा से पूछा।

नहीं जी! मुझे घर के लिए कुछ चाहिए।"

"घर के लिए भला क्या चाहिए?" सीमा को कौतुक हुआ।

"अम्मी जी!" विश्वा ने सकुचाते हुए कहा, "आप हंसना नहीं,...मैं पीछे की जमीन पर फूल और सब्जी उगाऊंगा। फावड़ा तो आंगन में दीख गया। आप खुरपी और बीज ला दो। ला देंगी ना...?

सीमा हंसते-हंसते दोहरी हो गई, "तू खेती करेगा?"

"आप हंसो मत। मैं छोटा हूं पर खेती-बाड़ी करना मुझे आता है। बाबा ने मुझे सब सिखाया है।"

विश्वा का निश्चय देख सीमा ने सोचा, हर्ज ही क्या है? इसी बहाने पीछे की जमीन साफ हो जाएगी। कुछ उगे या न उगे, गांव का बच्चा है, खेतों की याद आती होगी..., सोच कर उन्होंने सब चीजें ला कर विश्वा को दे दीं। विश्वा खुश हो गया जैसे खजाना हाथ लग गया हो। सोच रहा था ...मास्टरजी ने क्लास में कहा था कि जो अच्छे फल-सब्जी उगाएगा, उसे ईनाम मिलेगा। ईनाम का लक्ष्य रख विश्वा काम में जुट गया।

विश्वा ने सबसे पहले बाहर गहरा गड्ढा खोदा। रसोई में फल-सब्जी के जो छिलके निकलते, जूठन बचती, गड्ढे में डाल ऊपर मिट्टी की एक परत बिछा देता। बाबा ने बताया था कि यह सर्वोत्तम खाद बन जाती है।

विश्वा छोटा था पर दुनियादारी के उसूल खूब जानता था। उसे पता था कि न तो पढ़ाई में पिछड़ना है, न अम्मीजी के काम में कमी करनी है। हां, अंकुर के साथ खेलना जरूरी नहीं। खाली समय में उसने पीछे की जमीन साफ करनी शुरू कर दी।

झाड़-झंखाड़ साफ हुआ तो जमीन खोदनी शुरू कर दी, ''ओ मां! यह जमीन तो बहुत अच्छी है...आसानी रहेगी।'' खुशी में विश्वा के मुंह से निकला।

जमीन खुदी, क्यारियां बनीं। रसोई के पानी को गटर में गिरने से पहले ही टीन के टुकड़े का पतनाला सा बना 'खेत' की तरफ मोड़ दिया। बरसात बीत चुकी थी, अत: सर्दियों की सब्जियां लगेंगी।

एक-एक क्यारी में एक-एक सब्जी के बीज बोए। क्यारियों के बीच की मेड़ पर मूली लगाई। किनारे की मेड़ों पर गेंदा लगाया। चारों तरफ मटर बो कर खेत को कांटेदार तार से घेर दिया। हां, एक क्यारी उसने गुलाब के लिए रखी।

सदानन्द और सीमा ने कोई खास ध्यान नहीं दिया, ''अपना खाली वक्त ही वहां लगाता है...किसी के साथ लड़ाई-झगड़ा तो नहीं करता...। गीता अपने में मस्त थी। हां, अंकुर विश्वा के इस शौक से भुनभुना रहा था। विश्वा अब उसके साथ क्रिकेट या बॉल नहीं खेल पाता था। एक दिन खाने की मेज पर अंकुर फूट पड़ा, ''चले हैं जनाब, खेती करने। फल, सब्जी लगाएंगे। खेती का ए.बी.सी.तो आता नहीं पर समझते हैं जैसे पूसा संस्थान इन्हीं के बल पर काम करता है...।''

सदा ने अचकचा कर बेटे की ओर देखा, ''किस की बात कर रहे हो?''

''वही आपका विश्वा!''

''क्या किया उसने?''

सीमा ने बताया कि वह क्यारियां आदि बना रहा है, अंकुर के साथ खेलता नहीं, इसलिए यह भुनभुना रहा है।

सदानन्द हंस दिए, "इतनी सी बात! वह तुम्हारा खेल नहीं खेलता तो तुम उसका खेल खेलने लगो।"

"पापा! मैं? मैं खुरपी, फावड़ा ले कर मिट्टी में काम करूं?

"इसमें हर्ज ही क्या है? मिट्टी में उगे फल, सब्जी तो खूब खाते हो। वे कैसे उगाए जाते हैं, यह भी तो सीख लो।"

अंकुर मुंह फुला कर उठ गया, "इस घर में मेरी बात तो कोई सुनता ही नहीं। देख लेना, एक दिन मैं उसकी सारी क्यारियां मटियामेट कर दूंगा।"

"अंकुर!" सदानन्द ने गुस्से में अंकुर को डांटा "खबरदार! इतनी घटिया बात फिर कभी मत कहना। कोई तुम्हारा बैट-बॉल तोड़ डाले तो तुम्हें कैसा लगेगा?"

पिता का क्रोधित रूप देख कर अंकुर घबरा कर अपने कमरे में चला गया।

विश्वा की क्यारियां उसकी आशा से कहीं अधिक फल-फूल रही थीं। मूली, गाजर, गोभी, मटर, टमाटर...उसने जो कुछ भी बोया, उग गया। वह हर दिन पौधों का बढ़ना देखता। कब फूल आए, कब मटर लगीं। फूल गोभी का आकार देख उसकी आंखों में चमक आ गई, 'इस साल, स्कूल में पहला पुरुस्कार मुझे ही मिलना चाहिए।'

आज विश्वा के स्कूल में सालाना जलसा था। सुबह तड़के उठ उसने अपने बगीचे से फूलगोभी का सबसे बड़ा फूल निकाला, मटर तोड़ीं और पालक का एक गुच्छा बनाया। उसकी ये तीन प्रविष्टियां थीं।

आज विश्वा उत्तेजित था। पूरे जल्से में वह कुलबुलाता रहा। अन्त में पुरुस्कार वितरण का समय आया। उसका दिल जोर से धड़क उठा।

'पढ़ाई' के बाद पर्यावरण की बारी आई। विश्वा के चेहरे पर एक रंग आता, एक जाता। तभी घोषणा हुई..."छोटी कक्षाओं में पर्यावरण सुरक्षा के प्रति प्रयास का पहला पुरुस्कार...विश्वा।"



विश्वा की आंखें उमड़ आईं। अपने उछलते दिल को दोनों हाथों से थाम वह उसे शान्त कर रहा था।

तभी उसके कानों में आवाज गूंजी, "विश्वा मंच पर आए।"

मुख्य अतिथि विश्वा को देख चकित थे। उन्होंने मुख्याध्यापक से पूछा, "आपने जो सब्जियां मुझे दिखाईं, वे इस बच्चे ने उगाई हैं या इसके पिता ने?"

"सर! यह इसी बालक का श्रम है।"

"आश्चर्य! इतना छोटा बच्चा और इतनी सूझबूझ! इसे उचित प्रशिक्षण मिले तो बड़ा हो कर यह नई-नई खोज कर सकता है।"

मुख्य अतिथि के आग्रह पर विश्वा ने माइक हाथों में थामे स्कूल के सभी छात्रों के समक्ष बताया कि कैसे अध्यापक के बढ़ावा देने पर उसने जमीन साफ की, क्यारियां बनाईं और खाद तैयार की।

सारा सभागार तालियों से गूंज उठा। छोटे से विश्वा को बड़े-बड़े पुरुस्कारों से लाद दिया गया। सबसे ज्यादह आनन्द तो तब आया जब स्वयं प्रधानाचार्य खुद अपनी कार में विश्वा को घर छोड़ने आए।

अंकुर घर के बाहर खेल रहा था। तभी एक कार आ कर रुकी। 'कौन आया हैं', जानने के लिए अंकुर ने झांका तो कार में विश्वा को देख चौंक गया। तभी कार से प्रधानाचार्य उतरे।

'वाह! स्कूल में विश्वा ने जरूर कोई शरारत की होगी तभी प्रिन्सीपल उसकी शिकायत करने आए हैं। 'आज आएगा मजा', सोचते हुए अंकुर तेजी से घर के भीतर घुसा, "मम्मी! जल्दी आइए। देखिए, विश्वा ने क्या किया?"

मम्मी घबरा कर बाहर निकल आईं।

बाहर प्रधानाचार्य विश्वा का हाथ पकड़े खड़े थे। विश्वा के हाथों में अन्य पुरुस्कारों के साथ बड़ी-सी ट्रॉफी भी झिलमिला रही थी।

"यह सब क्या है,?" सीमा के मुंह से अनायास ही निकला।

"मैडम! आपके विश्वा पर सारे स्कूल को गर्व है।" प्रधानाचार्य ने उन्हें सारी बात बताई।

सीमा ने खुशी से उमग कर विश्वा को बांहों में भर लिया।

आज घर में विश्वा की उपलब्धियों की ही चर्चा थी पर अंकुर शाम से ही बेहद चुप था। अचानक वह आगे आ कर विश्वा से बोला," विश्वा! तूने सच्ची मेहनत की। आज तुझे उसका फल मिल गया। और मैं? मैं हमेशा तेरे इस काम का मजाक उडाता रहा।...अब मैं भी यह काम सीखूंगा। मुझे सिखाएगा ना?"

विश्वा को आज यह दूसरा ईनाम मिला। उसने आगे बढ़ कर अंकुर को गले लगा लिया।

# मुझे तुम पर गर्व है

"धीराऽऽऽ" स्कूल का काम करती धीरा के कानों में मां की पुकार पड़ी तो वह चिहुंक उठी, 'जब भी मैं पढ़ने बैठती हूं, तभी मां को कोई न कोई काम याद आ जाता है। बस...यह सवाल कर लूं,' सोचकर 'आई मां' कह कर वह जल्दी-जल्दी सवाल करने लगी।

तब तक मां उसे पुकारती हुई वहीं आ पहुंची, "मैं कितनी देर से बुला रही हूं। सुना नहीं क्या?"

"मां! यह सवाल कर के मैं आ ही रही थी।"

सवाल बाद में कर लेना। अभी जा कर रसोई देख। मैं मंदिर जा रही हूं। तेरे पापा आते होंगे। उन्हें गरम फुलके खिला देना।"

मां चली गई। पर, धीरा का मन उचाट हो गया। मां उसकी पढ़ाई को गम्भीरता से क्यों नहीं लेती? घर का पूरा काम करके ही वह पढ़ने बैठती है। फिर भी.....हां, पापा उसे, बहुत प्यार करते हैं। 'ओह.....पापा के लिए फुलके बनाने हैं,' वह एकदम रसोई की ओर भागी।

धीरा के पापा अरुण कुमार ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे। पर, बुद्धि उनकी प्रखर थी। आज से लगभग चालीस साल पहले उन्होंने एक छोटे से बाजार में परचून की दुकान खोली थी। उन दिनों उस बाजार में आज जैसी भीड़भाड़ नहीं थी। आसपास सरकारी बस्तियां थीं। नियमित ग्राहक आते रहते। अरुण ने समझ लिया कि दुकान चलानी है तो ग्राहक सन्तुष्ट रहना चाहिए। अरुण की मीठी बोली और 'उचित दाम पर अच्छा सामान' जैसी विशेषता के कारण एक बार जो दुकान पर आया, कहीं और गया ही नहीं। दुकान चल निकली।

हाथ में चार पैसे हों तो सिर पर छत की जरूरत महसूस होने लगती है। अरुण ने पास ही जमीन खरीद कर तीन कमरों का सुविधाजनक घर बना लिया। आमदनी अच्छी, खुद का घर, फिर विवाह में देरी का कोई कारण था ही नहीं। घरवालों ने अच्छी लड़की देख कर उनका विवाह कर दिया।

अरुण की पत्नी विमला कम पढ़ी-लिखी, पुराने विचारों की महिला थी। लड़की की नियति घर गृहस्थी संभालना है, वह इसे ही ध्रुव सत्य मानती। वंश पुत्र से बढ़ता है, इस धारणावश वह पुत्र की कामना करने लगी। एक साल बीतते न बीतते जब उसने कन्या को जन्म दिया तो वह बौखला गई। "हे भगवान! मैं रोज तुझे प्रसाद चढ़ाती रही कि मेरी गोद में एक बेटा दे दे...पर, तूने मेरी एक न सुनी...।"

अरुण देव-कन्या सी सुन्दर बच्ची देख फूला नहीं समाया, 'यह तो लक्ष्मी-सरस्वती का प्रतिरूप है।' बच्ची धीर स्वभाव की थी। रोना जैसे जानती ही न हो। उसकी तरफ देखो तो मुस्कुरा उठती। अरुण ने उसका नाम धीरा रख दिया। उसने निश्चय कर लिया कि अपनी लाड़ली को वह खूब पढ़ाएगा।

धीरा के जन्म से निराश विमला की सारी उम्मीद दूसरी सन्तान पर टिक गई, 'अगली दफा जरूर बेटा होगा।' महीनों पर महीने बीते, महीने सालों में ढल गए पर दूसरी सन्तान हुई ही नहीं। विमला मन ही मन धीरा को दोषी मान बैठी...इसे आने की जल्दी थी...,इसकी जगह बेटा हो जाता तो वंश चलता। और धीरे-धीरे उसके भीतर मानसिक उदासीनता घर करने लगी।

धीरा को मां का वात्सल्य नहीं मिला। पर, अरुण उस पर जान लुटाता; मां का प्यार भी वही देता। धीरा उस प्यार की छांव में बड़ी होने लगी। चार साल की हुई तो अरूण ने उसे स्कूल में भरती करा दिया। उसके लिए रंग-बिरंगा बैग खरीदा, 'लन्च बॉक्स' खरीदा और 'रोज कौन इसके लम्बे बालों की चोटियां करेगा,' यह सोच, उसके बाल कटा दिए। विमला ने बेटी के छोटे बाल देखे तो सिर पीट लिया, 'आप तो लड़की को मेम बनाने चले हैं...।'

एक शाम अरुण घर के आंगन में धीरा के साथ खेल रहा था। चाबी से उड़ने वाले जहाज में अरुण चाबी भर कर छोड़ता तो जहाज फुर्र से उड़

जाता। नन्हीं धीरा खिलखिलाती, तालियां बजाती, भाग-भाग कर जहाज उठा लाती। अरुण फिर चाबी भर कर उसे उड़ा देता।

ठीक उसी समय ऊपर आसमान में हवाई हजाज हवा को चीरता गुजर गया।

"बाबा! बाबा!" धीरा खुशी में झूमती हुई चिल्लाई, "देखो कितना बड़ा जहाज। बाप रे! इतने बड़े जहाज की चाबी कितनी बड़ी होगी? उसे घुमाता कौन होगा?"

अरुण ने हंस कर नन्ही धीरा को गोद में ले लिया, "बिट्टो! यह खिलौना नहीं, असली हवाई जहाज है...इसमें इंजन होता है और बहुत से आदमी इसमें बैठते हैं।"

"आदमी बैठते हैं," मारे आश्चर्य के नन्हीं धीरा की आंखें फैल गईं," ओ बाबा! उन्हें डर नहीं लगता...वे नीचे गिरते नहीं?...और...इसका ड्राईवर कहां बैठता है?"

धीरा की बालसुलभ भोली बातों पर अरुण मुग्ध हो उठा, "धीरा! जहाज चलाने वाले को ड्राइवर नहीं पायलेट कहते हैं...और इसमें बैठ कर डर नहीं लगता। यह चारों तरफ से बन्द होता है।"

सुन कर छोटी-सी धीरा सोच में डूब गई। किसी नतीजे पर पहुंच कर उसने पूछा, "बाबा! बड़ी हो कर क्या मैं भी जहाज उड़ा सकूंगी?"

पास से गुजरती विमला ने यह मासूम सवाल सुन लिया, मुंह बिचका कर बोली, "यह काम लड़के करते हैं, लड़कियां नहीं।"

धीरा ने अचकचा कर अरुण की ओर देखा, "बाबा! मेरे भी दो हाथ हैं, मैं भी स्कूल जाती हूं। फिर, मैं जहाज क्यों नहीं उड़ा सकती?"

अरुण का दिल भर आया। उसने बेटी को सीने से लगा लिया, "जरूर उड़ा सकती हो। बड़ी हो कर जहाज उड़ाना सीख लेना। फिर...अपने बाबा को भी जहाज की सैर कराना। कराएगी ना?"

धीरा खुश हो गई, "हां बाबा! आपको सैर जरूर कराऊंगी।"

उसी क्षण अरुण ने मन में निश्चय कर लिया कि वे बेटी को पायलट बनाने की हर सम्भव कोशिश करेंगे।

धीरा जब सातवीं कक्षा में थी तब एक घटना ने उसे दुःख और सुख दोनों के सागर में एक साथ ढकेल दिया। इतने वर्षों बाद विमला के पुत्र हुआ। खिलौने जैसा भाई पा कर धीरा खुशी से नाच उठी। बेटे के जन्म के बाद विमला एकदम बदल गई। उसकी उदासी छू मन्तर हो गई। इतने सालों बाद बेटा पाकर वह पूरे जतन से उसके लालन-पालन में लग गई। 'इसे किसी की नजर न लग जाए' का सोच उस पर हावी हो गया।

धीरा प्यार से अपने छोटे भाई को देखती तो मां कहती, '...ऐसे टुकुर-टुकुर मत देख। उसे नजर लग जाएगी।' गोद में लेना चाहे तो, 'ना ...ना...गिर जाएगा।' खेलने लगे तो, 'अरे...रे...छोड़, इसे...इसके हाथ-पांव टूट जाएंगे।' धीरा भाई से जितना खेलना चाहती, विमला उतना ही उसे बेटे से दूर रखती। यही धीरा का सबसे बड़ा दुःख था।

धीरा यह भी महसूस कर रही थी कि जिस मां ने उसके खिलौनों, कपडों और शौक की तरफ कभी ध्यान नहीं दिया, वही मां भाई वीनू के लिए आए दिन नए पकड़े और खिलौने लाते थकती नहीं थी। धीरा ने एक दिन मां से कह दिया, "मां! आप मेरे लिए तो कभी खिलौने नहीं लाईं।

वीनू को गोद में उछालती विमला ने लापरवाही से कहा, "लड़कियों के इतने नखरे कौन सहे!"

आज धीरा कुछ जिद में थी, "आप न मुझे भैया से खेलने देती हैं न भैया के खिलौनों से। मेरा दिल भी इनसे खेलने को करता है।"

"वीनू की बराबरी करती है," विमला भड़क उठी, "खबरदार! इसके खिलौने मत छूना।"

अपमान और क्षोम से धीरा की आंखें भर आईं।, दूसरे कमरे में आ कर वह सोच में बैठ गई, 'लड़के, लड़की में इतना भेदभाव क्यों? मैं अपनी मर्जी से तो लड़की नहीं बनी। मां ने ही मुझे जन्म दिया...खुद मां भी तो लड़की हैं...फिर ऐसा क्यों?'



वक्त के साथ-साथ अरुण की दुकान बढ़ती चली गई। देखते ही देखते अरुण ने उसे 'डिपार्टमेन्टल स्टोर' बना दिया। उधर, धीरा स्कूल की पढ़ाई समाप्त कर कॉलेज में जा पहुंची। कॉलेज जाना शुरू हुआ तो धीरा ने पिता से कहा, "बाबा! अपना वायदा याद है?"

"अच्छी तरह याद है," अरुण बेटी के दिल में पलते सपने को क्षण भर के लिए भी नहीं भूले थे। "जहाज उड़ाना सीखने के लिए एक साल की प्रतीक्षा और! अगले साल तेरा दाखिला दिल्ली के फ्लाइंग क्लब में करा दूंगा।"

"वायदा?"

"वायदा।"

दिल्ली के फ्लाइंग क्लब में आज धीरा का पहला दिन था। खुशी और उत्तेजना से उसका दिल उछल रहा था।

बाबा! मैं सीख सकूंगी ना?"

"मन का निश्चय पक्का है तो डर कैसा? खुद पर भरोसा हो तो भगवान भी मदद करते हैं।"

पायलेट की सीट पर बैठी धीरा के मानस में प्रायः बचपन का वह दिन कौंध जाता जब खिलौना-जहाज उड़ाते हुए उसके दिल ने सचमुच का जहाज उड़ाने का सपना देखा था।

स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण होने के साथ-साथ उसकी फ्लाइंग क्लब की ट्रेनिंग भी पूरी हुई। फाइनल चरण के लिए लुधियाना जाना होगा...कुछ हफ्तों की ट्रेनिंग के बाद उसे जहाज उड़ाने का लाइसेंस मिल जाएगा। वह सोचने लगी, 'कैसा होगा वह क्षण जब वह अकेली ही जहाज को ले कर आसमान में उड़ जाएगी! क्या ऊपर से अपना घर पहचाना जा सकेगा? कितना रोमांचक होगा वह अनुभव!

धीरा लुधियाना गई तो अरुण बेसब्री से एक-एक दिन गिनने लगा। बेटी से किया वायदा पूरा कर लेने की खुशी से उसका मन हल्का हो गया था। धीरा की अनुपस्थिति में अरुण बैठ कर अपनी बेटी की उपलब्धियों और

योग्यता के बारे में सोचता तो उसका दिल गर्व से भर उठता, 'पिछले जन्म के पुण्य कर्मों के फल-स्वरूप ही उन्हें इतनी योग्य बेटी मिली।'

लाइसेंस मिलने के बाद धीरा अधीर थी, 'पहली उड़ान बाबा को करानी है।'

आज वही दिन था। सर्दियों की एक उज्ज्वल खुशनुमा दोपहर! स्वच्छ नीला आसमान! हवाई अड्डे के रन-वे पर एक छोटा-सा जहाज टेक-ऑफ करता भाग रहा था। देखते ही देखते वह धरती छोड़ कर आकाश में उठ गया। निश्चित ऊंचाई पर जा कर जहाज ने गति पकड़ी।

कंट्रोल संभालती धीरा ने गर्दन घुमा बाबा की ओर देखा, "बाबा! आपको जहाज की सैर कराने का अपना वायदा आज मैंने पूरा किया ना?"

गर्व और खुशी के अतिरेक से उछलते दिल को संभालते हुए अरुण ने विभोर हो कर कहा, "मेरी बच्ची! मुझे तुम पर गर्व है।"

# मां! तुम कितनी अच्छी हो

"मम्मी! भूख लगी है, खाना दो। "स्कूल से लौटी अंकिता ने घर में घुसते ही गुहार लगाई।

स्कूल बैग और पानी की बोतल खाने की मेज पर पटकते हुए उसने जल्दी-जल्दी जूते-मौजे उतार कर एक कोने में फेंके और किचन के दरवाजे पर आ खड़ी हुई, "क्या बनाया है?"

यह उसका रोज का क्रम था। मम्मी कहतीं-'जूते, बैग जगह पर रखो ...हाथ मुंह धो कर आओ'। पर, अंकिता को समझाना भैंस के आगे बीन बजाने जैसा था। मजाल है कभी सुन ले। 'इतनी बड़ी हो गई, चीजें, संभालने की अक्ल नहीं आई', मम्मी अक्सर कहतीं, 'छोटे भाई को देख...तुझसे दो साल छोटा है, अपनी हर चीज संभाल कर रखता है...अपनी क्या, तेरी भी छोटी-मोटी चीजें वही संभालता है।'

छोटे भाई वरुण की तारीफ सुन अंकिता जल-भुन जाती, 'आपका लाड़ला तो वही है। प्यार उसके लिए, गुस्सा और उपदेश मेरे लिए,' वह तुनक उठती।

मां से कोई जवाब न पा कर उसने फिर पूछा, "बताओ न मम्मी! आज खाने में क्या बनाया है," यह कहते हुए उसकी नजर मम्मी के चेहरे पर पड़ी। उनकी आंखों का अनुसरण करते हुए उसकी नजर अपने बैग व जूतों पर पड़ी, "अपना लैक्चर मत शुरू कर देना। खाना खा कर रख दूंगी।" अंकिता ने झुंझला कर कहा।

"हाथ तो धो ले...या गन्दे हाथों ही खाना खाएगी?"

"मां हैं या हिटलर? जब देखो ऐसा क्यों किया...यह नहीं करते," बड़बड़ाती अंकिता बाथरूम में घुस गई।

तेरह बरस की अंकिता विद्रोहिणी बनती जा रही थी। तुनक मिजाज तो बचपन से थी। मम्मी सोचतीं...'थोड़ी बड़ी होगी तो समझ आ जाएगी।' पर, अब उसकी तुनक मिजाजी गैर जिम्मेदाराना होने के साथ-साथ उदण्ड बनती जा रही थी। मम्मी जो कहतीं, ठीक उससे उल्टा करके बेशर्मी से खीं-खीं कर हंसने लगती। मम्मी को बहुत दफा लगता...उन्हें खिझा कर मानो उसे खुशी मिलती है। वरुण से वैसे ही उसका छत्तीस का आंकड़ा चलता रहता। डरती थी सिर्फ पापा से। पापा जब तक घर में रहते, अंकिता सभ्य बनी रहती। मम्मी सोचती, यह लड़की पापा से सिर्फ डरती है या उनको प्यार भी करती है?

अंकिता अपने कमरे में बैठी पढ़ रही थी। सहसा उसे ख्याल आया, 'अरे! परसों तो पेरंट-टीचर्ज मीटिंग है। इस टर्म में मुझे सबसे ज्यादा नम्बर मिले हैं। मम्मी-पापा को मैडम बताएंगी तो वे कितने खुश होंगे।...पर, पापा क्या स्कूल आएंगे? कभी आए ही नहीं...सिर्फ मम्मी आ जाती हैं। पापा को वक्त ही नहीं मिलता। और बच्चों के पापा भी काम करते हैं...बच्चों के लिए वक्त निकाल ही लेते हैं। पर पापा...!'

उसकी सोच के घोड़ों की लगाम आज कुछ ज्यादा ढीली हो उठी, 'ऐसा लगता तो नहीं कि पापा हमें प्यार नहीं करते? पापा तो हमारी हर इच्छा पूरी कर देते हैं। और घरों में लड़कों को लड़कियों से ज्यादा लाड़-प्यार मिलता है, मैंने बहुत दफा अपनी सहेलियों से सुना है। लेकिन पापा ने मुझे कभी वरुण से कम नहीं समझा। मेरा पलड़ा भारी ही रहता है। फिर मेरे मन में यह रोष क्यों?'

अंकिता दोनों हाथों में सिर थाम कर बैठ गई, 'पापा के साथ खेलने, धींगामस्ती करने का कितना मन करता है, पर सुबह के निकले पापा देर शाम लौटते हैं। कई दफा सोचती हूं कि जब मैं छोटी थी तो पापा ने कभी बांहों में झुलाया भी या नहीं? पूछूंगी मम्मी से।'

मम्मी का ख्याल आते ही उसकी सोच मम्मी की तरफ मुड़ गई, 'सारा कसूर मम्मी का है। घर, बाहर के सारे काम का जिम्मा खुद ले रखा है।

पापा से कभी कुछ कहती ही नहीं। शायद...इसीलिए पापा ने इन चीजों की तरफ ध्यान देना छोड़ दिया। अकेली मम्मी कितना करती हैं...स्कूल आना है ...तो मम्मी। पढ़ाना है, बाजार से सामान लाना है, मम्मी। हम दोनों छोटे थे तो हमारे साथ खेलती थी, मम्मी। देखा जाए तो, मेरा गुस्सा पापा के लिए होना चाहिए...पता नहीं क्यों, पापा से कुछ कहते नहीं बनता...सारी खीझ मम्मी पर उतारती हूं। सच! मम्मी पर बहुत तरस आता है। चाहती हूं...उनका हाथ बंटाऊं, प्यार से बोलूं। फिर, न जाने मुझे क्या हो जाता है? उनको तंग करके एक अजीब-सी खुशी मिलती है।'

अंकिता के पापा देवेन्द्र अवस्थी होनहार व्यक्ति थे। सुनन्दा से विवाह हुआ तो उन्होंने मन की बात पत्नी से कही कि वे बहुत आगे बढ़ना चाहते हैं। नौकरी के साथ-साथ वे एम.बी.ए.कर लें तो अच्छे मौके मिलेंगे लेकिन नौकरी और पढ़ाई के साथ घर के लिए वक्त नहीं बचेगा। सुनन्दा साथ दे तो कदम बढ़ाएं, वरना, जैसा चल रहा है, चलने दें।

सुनन्दा ने घर की जिम्मेदारी संभाल ली। पापा के एम.बी.ए. होते-होते घर में अंकिता व वरुण आ गए। देवेन्द्र बच्चों पर जान छिड़कते पर उनसे खेलने का समय उनके पास नहीं था। एम.बी.ए.करते ही बहुत अच्छी नौकरी मिल गई। घर में सुख-सुविधाएं बढ़ने लगीं, पर, घर के लिए समय सिकुड़ता गया। सुनन्दा दृढ़ चट्टान-सी सब संभालती रही। देवेन्द्र तरक्की की सीढ़ियां चढ़ते चले गए। यह समय का ऐसा भंवर था जिसमें से बाहर निकलना दुश्वार था।

एक दिन सुनन्दा बीमार हो गई। तेज बुखार था। पापा ने डॉक्टर को दिखाया, दवाई-फल लाए और अंकिता से बोले, "आज तुम छुट्टी ले लो। वरुण का टैस्ट है। मैं जल्दी लौटने की कोशिश करूंगा। मम्मी सो रही हैं। उठें तो दवाई, फल आदि दे देना।"

पापा ऑफिस चले गए। दवाई के असर से मम्मी सो रही थीं। खाली अंकिता घर में इधर-उधर चक्कर लगा कर कमरे में आ बैठी। खाली दिमाग, शैतान का घर, 'मम्मी को भी आज ही बीमार पड़ना था? बीमारी भी क्या, बुखार ही तो है। और सब का काम जरूरी है...एक अंकूजी ही बेकार हैं!

करो छुट्टी! बैठो घर! पर, पापा से कौन कहे...।' ठीक इसी समय घड़ी ने टन से घण्टा बजाया। अंकिता उछली, 'मम्मी की दवाई का समय हो गया।'

मम्मी कुनमुना रही थीं। अंकू ने उन्हें दवाई खिला कर लिटा दिया। रसोई में जा कर सैंडविच बना कर खाए। उसे एक बार भी ख्याल नहीं आया कि मम्मी भी भूखी होंगी। खा-पीकर देखा कि मम्मी फिर से सो गई हैं। वह अपने कमरे में आई, एक उपन्यास उठा कर पढ़ने बैठ गई। उपन्यास मनोरंजक था। तीन घण्टे पलक झपकते बीत गए।

अचानक उसे लगा कोई हल्के-हल्के उसे पुकार रहा है। कहानी दिलचस्प मोड़ पर थी। वह टालती रही। आवाज फिर आई, 'अरे! मम्मी की आवाज,' अनिच्छा से वह उठी। जा कर देखा तो मम्मी पसीने से नहाई बेहाल हो रही थीं।

"कहां चली गई थी? इतनी देर से बुला रही हूं," बोलते-बोलते मम्मी हांफने लगीं।

अंकिता ने तौलिए से मम्मी का बदन पोंछा, कपड़े बदलवाए, "दवाई?"

"पहले मुझे कुछ खाने को दे। दो स्लाइस 'टोस्ट' कर दे और चाय बना ला।"

सुनन्दा की हालत देख अंकिता का मन भर आया। पर, कहानी का आकर्षण मम्मी की हालत से भारी पड़ रहा था। उसने बेमन से चाय बनाई। टोस्ट पर मक्खन लगाने लगी तो देखा अच्छी तरह 'टोस्ट' नहीं हुए हैं। मम्मी को एकदम सुनहरी, कुरकुरे टोस्ट पसन्द हैं। 'दोबारा सेकूं तो...और वक्त लगेगा। आज ऐसे ही चलने दें। चाय और टोस्ट पलंग के पास पड़ी मेज पर रखे, "मम्मी उठो! चाय पी लो," कह कर अंकू अपने कमरे में चली आई।

सुनन्दा सोच रही थी कि अंकू सहारा दे कर उठाएगी, चाय पिलाएगी ...। उसकी आंखें भर आईं, 'इस लड़की को मेरी जरा भी परवाह नहीं... मरूं या जिऊं, इसे क्या?' वह किसी तरह उठी। टोस्ट देख कर रो पड़ी, 'जो लड़की बीमार मां का ध्यान नहीं रख सकती, वह और क्या करेगी?'

इस साल अंकिता की दसवीं की परीक्षा थी। परीक्षा के बाद एक महीने की छुट्टी रहेगी। अंकिता सोचने लगी, 'एक महीना? घर में? मम्मी का लेक्चर? होस्टल में मेरी सहेली प्रिया छुट्टी में अपने घर जाएगी। कितना अच्छा हो यदि मैं अपनी छुट्टियां इस बार प्रिया के साथ बिताऊं।'

दूसरे दिन स्कूल में प्रिया ने एक बार फिर अंकिता से आग्रह किया, "तू भी साथ चल।" अंकिता को सुझाव भा गया? जयपुर देखने की बहुत इच्छा थी। प्रिया के साथ जाना ही ठीक रहेगा।



मम्मी सोच रही थीं एक महीना बेटी घर में रहेगी, कुछ काम सिखाऊंगी। पर अंकिता ने सोच लिया सो सोच लिया। पापा से 'हां' करा ली और जयपुर चली गई।

जिन्दगी का सफर चलता रहा।

आज सुनन्दा का जन्मदिन था। पापा और वरुण ने ढेर-ढेर बधाइयां दीं। तोहफे दिए। सुबह के कामों से फुरसत पा कर सुनन्दा अखबार ले कर बैठी। मुखपृष्ठ पर एक लड़की की फोटो थी, किसी खेल में जीती ट्रॉफी लेते हुए। उसे देखते ही सुनन्दा को अंकिता की याद आ गई। इस लड़की से इतना ना हुआ कि एक फोन ही कर दे। अनायास उनकी आंखें भर आईं, अपनी सन्तान के निष्ठुर होने से बड़ी पीड़ा दूसरी नहीं है। हल्का मन एकदम भारी हो गया। वे जा कर लेट गईं।

दरवाजे की घण्टी से उनकी तन्द्रा टूटी। पोस्टमैन खड़ा था। उनके नाम पार्सल था। अन्दर आ उलट-पलट कर देखा। भेजने वाले ने नाम-पता कुछ नहीं लिखा। उत्सुकता से खोला तो आंखें चौंधिया गईं। बहुत खूबसूरत चूड़ी बॉक्स में ढेर से जयपुरी कंगन। 'मेरी पसन्द के कंगन किसने भेजे,' सोचते हुए कंगनों में फंसा पत्र खोला। 'अंकू की लिखावाट? यह सपना तो नहीं?'...

प्यारी मां!

हैरान हो ना? मैं भी हैरान हूं, इतने बरस मैं आपके पास रह कर भी दूर बनी रही। पहली दफा आपसे दूर आई हूं तो लगता है अचानक आपके बहुत पास आ गई हूं। यह अहसास होते ही मेरा मन मुझे लताड़ रहा है...क्यों करती रही मैं आपको तंग? सच बताऊं, वहां थी तो कभी लगा ही नहीं कि मैं कुछ गलत कर रही हूं। आप मेरे लिए सब कुछ करतीं, मुझे लगता, हर मां ऐसे ही करती होगी।

प्रिया के घर आ कर देखा कि रिश्ते कितने सतही और खोखले हो सकते हैं। मां बेटी, भाई-बहन, पति-पत्नी के रिश्तों में कितना बेगानापन है...! अचानक, जैसे मेरा तिलिस्म टूट गया। आपने घर में जो प्यार और स्नेह की गंगा बहाई है, उसकी शीतलता आज

मेरे दिल और दिमाग में भर गई। मां! आपके पास आ कर, आपसे बहुत बातें करनी हैं।

जन्मदिन मुबारक हो। आपकी पसन्द के कंगन भेज रही हूं। शाम जब मैं पहुंचूं, कंगन आपकी कलाई में हों। हां, मां! मैं आ रही हूं। आपका जन्मदिन हम सब मिल कर मनाएंगे।

आपकी बेटी

अंकू

खुशी के आंसुओं से मां की आंखें नम हो गईं और उन्होंने अंकिता के भेजे कंगन उठा कर चूम लिए।

# बाजी पलट गई

भौं...भौं...भौं, दूर से आती आवाज सुन कर कमरे में बैठे दो प्राणी चौंके। दोनों की नजरें मिलीं। बारह वर्षीय सजल उत्साहित हो उठा। पर, उसकी दीदी ममता झल्ला गई, "आ गया तूफान। भौंक-भौंक कर सारा घर सिर पर उठा लेगा।"

सजल रुआंसा हो गया, "आप टाइगर से इतना चिढ़ती क्यों हैं? मेरे दोस्त का कुत्ता काटता नहीं है। मेरा बस चले तो मैं उसे घर में रख लूं।"

"खबरदार"...दीदी गरजीं, "इस घर में कोई टाइगर नहीं रह सकता।"

दीदी की बात पूरी होने से पहले ही उनकी बात का नायक कमरे में घुस आया। वह सीधे सजल पर लपका। उसके ऊपर चढ़, उसके चारों ओर घूम, उसे चाट कर अपना प्यार जताने लगा।

दीदी का पारा चढ़ गया, "सजल! इस तूफान को फौरन बाहर ले जा।"

दीदी का बोलना मुसीबत हो गया। टाइगर की नजर दीदी पर पड़ी, प्यार से उमग कर वह दीदी की ओर लपका।

दीदी चीख उठीं। ठीक इसी समय सजल का दोस्त कल्याण कमरे में आया। वहां का नजारा देख दोनों दोस्तों ने टाइगर को ले कर कमरे से बाहर जाने में ही भलाई समझी।

सजल और कल्याण एक ही कॉलोनी में रहते थे। स्कूल एक, कक्षा एक। दोनों में गहरी दोस्ती थी। सजल को कुत्ता पालने का बेहद शौक था।

ममता कुत्तों से चिढ़ती थी। सजल जब भी पापा, मम्मी से एक छोटा-सा कुत्ता खरीदने की बात करता, ममता सदा आड़े आ जाती।

"दीदी! मैं कुत्ता ले लूंगा तो आपको क्या फर्क पड़ेगा," रुआंसा सजल पूछता।

"बस, नहीं।"

"दीदी! घर में कुत्ता हो तो दूसरों पर रौब पड़ता है। घर में चोर नहीं आते। उसके गले में जंजीर डाल मैं घुमाने ले जाऊंगा तो मेरी कितनी शान होगी। हम उसे अच्छी तरह 'ट्रेण्ड' भी कर लेंगे। जिससे वह घर में गंदगी न करे।"

"ट्रेण्ड होने से पहले तो वह घर में ही गंदगी करेगा ना?" दीदी कहती।

सजल हार जाता। हर बार बात यहीं आ कर रुक जाती।

वक्त यूं ही बीत रहा था। सजल टाइगर से खेल कर ही हसरत पूरी कर लेता। अब उसमें भी बाधा पड़ गई। कल्याण के पापा को सरकारी घर मिल गया। वे उसमें चले गए। शुरू में सजल बहुत उदास रहा। धीरे-धीरे आदत पड़ गई।

तभी एक दिन कुछ ऐसी घटना घटी जिसने ममता दीदी की सोच ही बदल दी।

हुआ यूं कि छुट्टी के दिन ममता अपनी सहेली के घर गई। सुबह पापा ने कार से उसे वहां छोड़ दिया। ममता ने दिन भर सहेली के साथ मौज-मस्ती की। सांझ घिरने से पहले वह घर के लिए चल दी। सहेली ने बस में बिठाया। यह बस सीधी ममता की कॉलोनी तक जाती थी।

बस थोड़ी ही दूर गई थी कि जोर के धमाके के बाद फट्-फट् की आवाज के साथ रुक गई। कण्डक्टर नीचे उतरा। बोनेट खोल कर देखा। ड्राइवर ने बस चलाने की कोशिश की। पर, बस अंगद का पांव बन गई। अपनी जगह से टस-से-मस न हुई।

"बस खराब हो गई है...अग्गे ना जावेगी...सब हई उतर ल्यौ", ठेठ हरयाणवी लहजे में उद्घोषणा करके कंडक्टर और ड्राइवर दोनों बस से उतर

गए। दिल्ली की जनता का भी जवाब नहीं, विरोध का जज्बा लेशमात्र भी बाकी नहीं बचा। सब लोग चुपचाप बस से उतर गए। ममता ने देखा कि वह बस में अकेली रह गई है। भारी मन से नीचे उतरी।

ममता की एक समस्या थी। उसे अकेले कहीं आने-जाने की आदत नहीं थी। कॉलेज के लिए 'यू स्पैशल' थी। बाकी जगह मम्मी-पापा के साथ जाती। उसे तो यह भी नहीं पता था कि इधर से कोई और बस उसके घर की तरफ जाएगी या नहीं?

नीचे उतर कर ममता ने इधर-उधर नजर दौड़ाईं। इतनी सी देर में सब सवारियां इधर-उधर हो गईं। कंडक्टर और ड्राइवर थोड़ी दूर खड़े निश्चिन्त भाव से बीड़ी फूंक रहे थे।

कुछ समझ नहीं आया तो ममता ने उनसे ही पूछा कि अगली बस कब और कहां मिलेगी?

दोनों ने उसे घूर कर देखा। फिर लापरवाही से बोले, "ऊंघ्घे चाल्ली जा...वो...पाछे पीली बिल्डिंग है...वहीं पूछ ले।"

ममता ने घूम कर पीछे देखा। उसे दूर-दूर तक कोई पीली बिल्डिंग नजर नहीं आई। कंडक्टर से दोबारा पूछने की हिम्मत नहीं हुई। इधर-उधर देखा। आसपास कोई नहीं। किससे पूछे? मन मार कर वह आगे बढ़ी। आसमान की तरफ देखा...सांझ घिरती चली आ रही थी। कुछ देर में अंधेरा हो जाएगा। घबराहट के मारे ममता पसीना-पसीना हो गई।

मुसीबत कभी अकेले नहीं आती। सड़क किनारे फुटपाथ पर चलते हुए ममता ने देखा कि आवारा किस्म के दो-तीन लड़के उस पर फबतियां कसते हुए उसके पीछे आ रहे हैं। उसने चाल तेज कर दी। पर, घबराहट और डर के कारण वह तेज चल ही नहीं पा रही थी।

ठीक इसी समय एक और मुसीबत आ गई। दूर से भागता आता कुत्ता ममता पर झपट पड़ा। ममता चीख उठीं। वह जितना खुद को छुड़ाने की कोशिश करती, कुत्ता भौंक-भौंक कर उतना ही उस पर चढ़ता जाता। अचानक ममता को महसूस हुआ कि कुत्ता उसे काट नहीं रहा है बल्कि चाट-चाट कर प्यार जता रहा है। उसने गौर से देखा। उसके मुख से निकला, "टाइगर"

वह सचमुच टाइगर था। दूर से ममता को पहचान कर वह भागता चला आया। हमेशा टाइगर से चिढ़ने वाली ममता को आज वह देवदूत से कम नहीं लगा।

आवारा लड़के अब तक ममता के करीब आ चुके थे।ममता ने उनकी तरफ इशारा कर के टाइगर से कहा, "शूऽऽऽ!"



टाइगर एक ही छलांग में उन पर जा चढ़ा। लड़के चीख मार कर भाग खड़े हुए।

ममता टाइगर को गोद में ले वहीं घास पर बैठ गई। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। वह टाइगर को पुचकार कर बार-बार कहे जा रही थी, "टाइगर! आज तूने बचा लिया।" तभी ममता को कुछ याद आया। उसकी सहेली के घर छोटे-छोटे पांच 'पपी' जन्मे थे। बेहद खूबसूरत! मुलायम! वह उससे अवश्य एक 'पपी' मांगेगी, उसने निश्चय किया।

"ऐ लड़की! इस कुत्ते को ले जाने को इरादा है क्या? यह मेरा कुत्ता है।" अचानक इस आवाज से चौंक कर ममता ने ऊपर देखा। अधेड़ उम्र का एक सम्भ्रान्त व्यक्ति खड़ा उसी से कह रहा था।

"नहीं! यह टाइगर है।" "टाइगर...पर, तुम इसका नाम कैसे जानती हो," वह व्यक्ति हैरान था।

"मैं जानती हूं, क्योंकि, यह कुत्ता आपका नहीं कल्याण का है।"

"कल्याण...! तुम कल्याण को कैसे जानती हो? तुम कौन हो?"

"पहले आप बताइए...आप कौन हैं और यह आपका कुत्ता कैसे है?"

"कल्याण मेरा बेटा है।"

यह सुनते ही ममता चौंक गई। कल्याण के पापा! वह अब तक कल्याण के मम्मी-पापा से नहीं मिली थी। पलक झपकते ही उसका सारा डर उड़न-छू हो गया। झटपट खड़े हो कर वह बोली, "अंकल! मैं सजल की दीदी ममता हूं।"

फिर तो आनन-फानन ममता ने अपनी परेशानी उन्हें बता दी।

"नो प्रॉब्लम! हम तुम्हें छोड़ने घर चलते हैं। इसी बहाने आज तुम्हारे मम्मी-पापा से भी मिल लेंगे।"

घर पहुंचते ही ममता ने अपनी सहेली को फोन मिलाया, "मुझे सफेद और भूरी बिंदियों वाला 'पपी' चाहिए, दोगी ना!"

# ईशा मुस्कुरा उठी

आठ-नौ साल की ईशा! सबकी लाड़ली! सबकी दुलारी! सबका काम भाग-भाग कर करती। मम्मी का ही नहीं, पड़ौस की आंटी का भी। ईशा हमेशा खुश रहती। खुद हंसती और दूसरों को भी हंसाती। सब उसे प्यार करते।

बस, एक शानू दीदी थी, जो उससे चिढ़तीं।

पड़ौस वाली आंटी की सबसे बड़ी बेटी शानू दसवीं में पढ़ती थी। वह थी भी महा आलसी। मम्मी किसी काम के लिए कह दें; वह टाल जाती, या फिर बड़बड़ाती हुई अपने कमरे में जा बैठती।

ऐसे में शानू की मम्मी ईशा को ही पुकारतीं, "ईशा! जरा यह काम तो कर दे।" और ईशा हंसते-भागते काम कर देती।

कभी-कभी ईशा सिर ठोंक-कर कह उठती, "हे भगवान! एक ईशा और काम ढेरों। मुझे तो सांस लेने तक की फुर्सत नहीं ...।"

ईशा के घर के पीछे था बगीचा। खूब बड़ा! एक ओर फूलों की क्यारियां और दूसरी ओर सब्जियों के पौधे। उनके पीछे फलों के पेड़। आम, अमरूद, लौकाट, कमरख...सभी तो था। बरामदे के ठीक सामने अंगूर की बेल। माली ने ऊंचे-ऊचे बांस गाड़ कर मचान तान दी। बेल हरहराती, लहराती मचान पर फैलती चली गई। अंगूर के बड़े-बड़े गुच्छे नीचे की तरफ लटकते तो देखने वालों के मुंह में पानी आ जाता।

ईशा जब देखती कि अंगूर रस से भर कर लाल हो रहे हैं तो वह झट से मेज ले आती। मेज पर स्टूल रखती और चढ़ जाती स्टूल पर। ईशा

इतनी ऊपर पहुंच जाती कि अंगूर के गुच्छे उसके मुंह को छूने लगते। ईशा उमग कर मुंह से तोड़-तोड़ कर अंगूर खाने लगती।

नीचे आसपास के बच्चे जमा हो जाते, "ईशा! हमें भी अंगूर दे ना!"

ईशा पके अंगूरों के गुच्छे तोड़ उनके हाथों में फेंक देती।

शानू ईशा को ऐसे अंगूर खाते देख और चिढ़ जाती, "यह भी कोई तरीका है अंगूर खाने का?"

वैसे सच तो यह है कि शानू का मन भी गुच्छे में मुंह लगा कर अंगूर खाने को करता। पर, वह ऊपर चढ़े कैसे?

हां, ईशा उसे देख लेती तो पुकार उठती, "ऐ दीदी! लो अंगूर खाओ। बहुत मीठे हैं।"

अंगूर पकते तो न जाने कहां से बन्दर आ धमकते। कुछ खाते, कुछ तोड़ कर फेंक देते। खूब उत्पात मचाते।

ईशा को बन्दरों पर गुस्सा आता, 'खाने हैं तो खा लें। बरबाद क्यों करते हैं?'

एक दिन बन्दरों का सरदार छत की मुंडेर पर आ बैठा। बेल में लाल-लाल अंगूर देखे तो ऊपर से ही मचान पर छलांग लगा दी। अब हुआ यूं कि उस जगह मचान की रस्सी कमजोर पड़ चुकी थी। मोटा बन्दर जोर से कूदा और रस्सी टूट गई। बन्दर धड़ाम से फर्श पर आ गिरा।

ईशा हंस-हंस कर लोटपोट हो गई, 'आया मजा...कैसे कूं-कूं करता हुआ भाग रहा है!'

एक काम में ईशा बन्दरों के जैसी थी। बन्दरों की तरह वह सर्र से पेड़ पर चढ़ जाती। कभी इस डाल, कभी उस डाल। पके फल तोड़ती और डाल पर बैठे-बैठे खा लेती।

शानू उसे पेड़ पर चढ़े देखती तो जलभुन जाती, 'कैसे बन्दरों-सी पेड़ पर कूद रही है?' पर, सच तो यह था कि वह भी पेड़ पर चढ़, हाथ से

फल तोड़ कर खाने के लिए तरसती। पर, उसे तो पेड़ पर चढ़ना आता ही नहीं था।

इस साल अमरूद बहुत लगे। बड़े-बड़े, पीले, सुनहरी अमरूदों को देख मुंह में पानी आता। शानू ने मन में ठान लिया कि वह भी पेड़ पर चढ़ना सीखेगी। एक दिन सारा अभिमान भूल वह ईशा से कह उठी, "ईशा! मुझे पेड़ पर चढ़ना सिखा दे।"

ईशा ने दीदी को ऊपर से नीचे तक देखा और बुक्का फाड़ कर हंस पड़ी, "दीदी! आप पेड़ पर चढ़ेंगी?"

शानू गुस्से से लाल-पीली होने लगी, "तू चढ़ सकती है तो मैं क्यों नहीं चढ़ सकती?"

"मेरी बात और है।"

"तू अपने को समझती क...," कहते-कहते शानू रुक गई। पेड़ पर चढ़ना सीखना है तो गुस्से से काम नहीं बनेगा। ईशा को पुचकारते हुए बोली, "तुझे इतना कुछ आता है...मुझे भी सिखा दे ना।"

कुछ सोच कर ईशा ने कहा, "ठीक है। छुट्टी वाले दिन आ जाना।"

छुट्टी के दिन शानू ईशा से पहले पेड़ के नीचे आ पहुंची।

ईशा ने आ कर पाठ शुरू किया, "पहले पेड़ को दोनों बांहों से कस कर पकड़ लो...एक पांव ऊपर रखो...उचक कर ऊपर वाली डाली पकड़ो ...साध कर दूसरा पैर डाली पर रखो...ऐसे," कहते हुए वह झट पेड़ पर चढ़ गई।

"अब आप कोशिश करो। पैर ऊपर रखो...ठीक जमा कर...।"

शानू ने दो-तीन दफा कोशिश की। फिर रुआंसी हो कर बोली, "हम से नहीं होता।"

ईशा पेड़ से उतर आई, "चलो, यहां से पकड़ो...हाथ और ऊपर ले जाओ...कोशिश करो...अच्छा ठहरो...नीचे से मैं सहारा देती हूं।"



ईशा ने शानू को सहारा दिया। शानू ने लपक कर ऊपर की डाली पकड़ी ...ईशा ने ऊपर की ओर धकेला...और...शानू पेड़ पर चढ़ गई।

ईशा तालियां बजा कर खुशी से नाच उठी, "दीदी पेड़ पर चढ़ गई।"

"दीदी! आपके ठीक सामने, पत्तों के पीछे...ना इधर नहीं...बाईं ओर... हां, यहां...पत्ते हटाओ...एक पका अमरूद है...तोड़ लो।"

शानू ने खट् से अमरूद तोड़ लिया। वह गर्व और खुशी से भर उठी, 'अब उसे भी पेड़ पर चढ़ना आ गया है।'

ठीक इसी समय पेड़ पर भूचाल आ गया। सारा पेड़ जोर-जोर से हिलने लगा।

एक मोटा बन्दर पेड़ पर चढ़ आया था।

"दीदी! भागो...। बन्दर...," ईशा चिल्लाई।

सामने बन्दर देख शानू लड़खड़ा गई। हाथ डाली से छूटे और वह धम्म से नीचे आ गिरी। गनीमत थी कि नीचे घास थी। शानू को चोट नहीं लगी।

ईशा ने लपक कर शानू को संभाला, "दीदी! आप ठीक हो न...चोट तो नहीं लगी? बन्दर मुए को भी इसी वक्त आना था!... लो...मेरा सहारा ले कर खड़ी होने की कोशिश करो...।"

शानू ने आंख उठा कर ईशा की तरफ देखा, 'मैं इससे कभी सीधे मुंह बात नहीं करती। इसे देखो, मेरे लिए कितनी परेशान हो रही है...मैं होती तो इसे छोड़ भाग खड़ी होती। मैं सचमुच बहुत बुरी हूं...तभी मुझे कोई प्यार नहीं करता।'

शानू ने ईशा को दोनों बांहों में भर लिया, "ईशा! तू बहुत अच्छी है। तूने मेरी आंखें खोल दीं। आज से मैं भी तेरी तरह अच्छी लड़की बनने की कोशिश करूंगी।"

ईशा मुस्कुरा उठी।

# तरबूज खाओगे?

बस अड्डे पर टैक्सी रुकी। चारों दोस्त कूद कर बाहर निकले। झटपट डिक्की से सामान निकाला, टैक्सी वाले को पैसे दिए और तेजी से शिमला जाने वाली एक्सप्रैस बस की ओर चल दिए। अंग-अंग से उत्साह फूट रहा था।

''उधर नहीं यार! शिमला जाने वाली बस इधर, दांए खड़ी होती है। ...अरे भई! मैं परसों आ कर सब कुछ देख कर गया था,'' आकाश ने आगे बढ़ते हुए कहा।

''तुम्हारी यही क्वालिटी तो हमें पसन्द है...सही मायने में लीडर हो।'' मोहित ने कहा और तीनों उसके पीछे हो लिए।

सामने बस तैयार खड़ी थी। चारों ने अपना-अपना सीट नम्बर देखा, सामान ऊपर रखा। तभी कंडक्टर ने बस चलने की सीटी दे दी।

मोहित, आकाश, अक्षत और कमल। चार दोस्त। छठी कक्षा से साथ पढ़े। इस साल बारहवीं की परीक्षा दी है। चारों ने ही बी.कॉम ऑनर्स करने का फैसला किया। जून महीना पूरा खाली। दिल्ली यूनीवर्सिटी में दाखिले जून से शुरू होते हैं। अखबार में एक 'ट्रैकिंग टूर' का विज्ञापन देखा और हो गया फैसला। पन्द्रह-बीस दिन का प्रोग्राम बन गया। आज चारों उसी यात्रा पर निकले हैं। दोपहर चार बजे के आसपास बस कालका पार कर परवाणू से आगे पहुंची तो मौसम में बदलाव आया। परवाणू से निकलने ही तो 'टिम्बर ट्रेल' होटल है। आज रात यहीं रुकेंगे।

यह होटल सड़क के किनारे बना है। नीचे गहरी खड्ड, खड्ड में बहती बरसाती नदी, नदी के दूसरे किनारे से ऊपर उठती दूसरी पर्वत शृंखला। इस पहाड़ की चोटी पर बना 'टिम्बर ट्रेल' का दूसरा होटल। यह यहां का आकर्षण है। नीचे वाले होटल से ट्रॉली द्वारा ऊपर पहुंचते ही जो दृश्य सामने आता है, उसे देख हर पर्यटक मुग्ध हो उठता है।

ट्रॉली से बाहर आते ही ठंडी हवा के झोंके ने उनका स्वागत किया। मन प्राण प्रफुल्लित हो गए। "दिल्ली की झुलसती गर्मी में सोच भी नहीं सकते कि यहां इतना सुहावना मौसम होगा!"

नहा-धो कर 'फ्रैश' होने के बाद पेट-पूजा के लिए रेस्तरा में जा पहुंचे। ऑर्डर दे कर प्रोग्राम का पर्चा निकाल वे आगे की योजना बनाने लगे। सुबह नाश्ते के बाद चल देंगे और दोपहर तक बिजौली गांव पहुंचेंगे। वहां टूर वालों का एक ढाबे से करार है। दोपहर का भोजन तैयार मिलेगा। खाना खा कर थोड़ा सुस्ताएंगे। आगे पन्द्रह किलोमीटर पर एक और गांव है। वहां होगा रैन-बसेरा। प्रोग्राम में हिदायत है, 'अन्धेरा होने से पहले गांव पहुंच जाओ। अन्धेरे में जंगली जानवर बाहर निकल आते हैं।'

"व्हॉट एक्साइटमेंट," कमल उत्साह से दोनों हाथ मलने लगा, "रियल थ्रिल! मुझे तो सोच कर ही झुरझुरी आ रही है।"

"अगर सचमुच कोई शेर, चीता आ गया तो"...अक्षत जरा सहम गया।

"यार! अब तू बच्चा नहीं रहा। यू आर ए मैन नाऊ।...और, हम सब साथ होंगे," आकाश ने अक्षत की पीठ पर धौल जमाया।

"आगे बढ़ो," मोहित उतावला था।

गांव में रात गुजारने के बाद, आगे ट्रैकिंग ट्रेल दो रास्तों में बंट जाती हैं। एक ट्रेल शिमला, कुफरी हो कर चैल जाती है। दूसरी पहाड़ से नीचे उतर सिरमौर की रेणुका झील ले जाती है।

"कौन सी ट्रेल लेनी है," आकाश ने पूछा।

"यार! चैल तो हमने देखा हुआ है। रेणुका वाली ट्रेल लेते हैं।"

फैसला हो गया।

"एक मिनट!" आकाश ने टोका, "दिल्ली में टूर ऑपरेटर ने कहा था, भूखे मत रहना। बहुत भारी खाना मत खाना वरना चला नहीं जाएगा। फल अधिक खाना...।"

रेणुका पहुंचते-पहुंचते मित्र-मंडली थक कर चूर थी। पर, यहां की हवा में न जाने कैसा जादू था, नहा-धो कर एकदम तरोताजा हो गए। अगले दिनों में चूड़धार पहाड़ की चोटी पर गए, झील में बोटिंग की, परशुराम और रेणुका मैया के मंदिरों के दर्शन किए। नाहन तक ट्रैकिंग की। फिर नाहन से दिल्ली के लिए बस ले ली।

दिल्ली पहुंचने के अगले दिन अक्षत को पेट में अजीब मरोड़-सा महसूस हुआ। हल्का दर्द भी था।

"इतने दिन इधर-उधर का अंट-संट खाया। बदहजमी हो गई होगी," कहते हुए मम्मी ने दवाई दे दी। कोई फायदा नहीं हुआ।

कमल का फोन आया। उसका भी यही हाल था। डॉक्टर ने देखा। दवाई दी। कोई फायदा नहीं हुआ। अब सबको चिन्ता सताने लगी। कितने ही टैस्ट कराए लेकिन कुछ स्पष्ट नहीं हुआ।

आकाश व मोहित को खबर मिलीं तो वे दौड़े चले आए। उनको भी पेट में हल्का दर्द होता था। पर, इतना बुरा हाल नहीं था।

"जरा याद करो बच्चो! कहीं कोई बासी, खराब चीज तो नहीं खाई," अक्षत की मम्मी ने पूछा।"

"आंटी! कहीं कुछ ऐसा-वैसा नहीं खाया। हमारा जोर तो फलों पर रहता था। और...कभी भी, रास्ते में, पेट की गड़बड़ नहीं हुई।"

ट्रैकिंग का सारा आनन्द किरकिरा हो गया। डॉक्टरों ने और डरा दिया, "एम.आर.आई. करा लो। सारे शरीर का पता लग जाएगा।"

मरता क्या न करता। मन पक्का कर लिया।

अगले दिन आकाश कमल के घर आया, "ले पढ़, इसमें क्या लिखा है?" उसने अखबार कमल को पकड़ा दिया।

पढ़ कर कमल बोला, "तो...?"

"बुद्धू! ध्यान से पढ़,"...'बाजार में तरबूज बहुत आ रहे हैं...ज्यादा बिक्री के लिए तरबूजों में लाल रंग के इन्जेक्शन दिए जा रहे हैं...यह रंग शरीर के लिए बहुत हानिकारक है। पेट में मरोड़ उठते हैं, हल्का दर्द होता है, धीरे-धीरे शरीर के सब सिस्टम कमजोर पड़ने लगते हैं। आंतों का कैंसर भी हो सकता है...।'

कमल चिल्ला उठा, "आकाश! हमने सारे रास्ते तरबूज ही खाए हैं। ओ मां! मुझे कैंसर हो जाएगा,' कमल बिलख उठा।

"चुप!" आकाश ने कमल के मुख को हाथ से ढक दिया, "आंटी सुनेंगी तो बेहाल हो जाएंगी।...मेरी बात ध्यान से सुन...यह एक सम्भावना मात्र है। अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। मोहित और मैं, हम दोनों तुम से काफी अच्छी हालत में हैं। हम साइंस सर के पास जा कर पूरी जानकारी इकट्ठा करते हैं। मैं अक्षत को भी सावधान कर दूंगा।"

दो-तीन दिनों में मोहित और आकाश ने जो जानकारी एकत्र की, वह चौंकाने वाली थी। चारों दोस्त आकाश के घर बैठे थे। आकाश बोला, "कई दफा सुनने, पढ़ने में आ जाता था कि खाने की चीजों में मिलावट होती है। हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया। अब जो जानकारी एकत्र की उससे तो हम दंग रह गए।"

"यार! हम लोग खाने के नाम पर जहर खा रहे हैं," मोहित बहुत उत्तेजित था। "अपने देश में कोई चीज ऐसी नहीं जिसमें मिलावट न हो। और मिलावट भी ऐसी कि घिन आ जाए।"

"हमारा क्या होगा," अक्षत रुआंसा था।

"चियर अप माई ब्यॉय! डरने से समस्या का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता। सोचने के लिए जागरूक दिमाग की जरूरत होती है," मोहित ने सान्त्वना दी।

आकाश ने बात थाम ली, "बीमारी आ ही गई है तो रोने से दूर नहीं होगी। कोई न कोई हल तो निकालना ही होगा।...मैंने एक योजना बनाई है। सुन कर अपनी-अपनी राय देना।"

आकाश ने बताया कि हमारी असली समस्या यह है कि खाने की चीजों में भारी मात्रा में मिलावट हो रही है। तरबूज में खतरनाक रंग डालना तो समस्या की एक कड़ी-भर है। 'सर' ने बताया था कि हम लोगों ने यात्रा के दौरान बहुत तरबूज खाया, इसलिए जल्दी ही अस्वस्थता का पता लग गया। वरना, पूरी गर्मी, घर में, दूसरे-तीसरे दिन तरबूज खाया ही जाता है। उसका असर 'स्लो-पॉइजनिंग' की तरह होता है।"

"तीन-चार सालों में शरीर का सारा सिस्टम गड़बड़ा जाता है, तब लक्षण अभर कर आते हैं। तब तक बहुत देर हो चुकी होती है," अक्षत ने अपना ज्ञान बघारा।

"एक तरह से यह घटना हम लोगों के लिए "ब्लैसिंग-इन -डिसगाइज' की तरह घटी है। हमें जल्दी पता लग गया।"

"आज मुझे काफी आराम है," कई दिनों के बाद अक्षत के चेहरे पर हंसी झलकी।

"आकाश! तू कुछ बता रहा था," मोहित उतावला था।

"हम सब गाहे-बगाहे अखबारों में पढ़ते रहते हैं कि दूध नकली बन रहा है, सरसों का तेल खा कर लोग मर गए, मसालों, दालों आदि में भारी मात्रा में मिलावट हो रही है...वगैरह...वगैरह...। सब पढ़ते हैं और भूल जाते हैं।"

"मिलावट के खिलाफ कानून नहीं है क्या?" कमल कसमसा रहा था।

"यार! कानून तो दहेज लेने के खिलाफ भी है। बन्द हुआ दहेज मांगना?...'बने कानून पर अमल न करना' हमारे सिस्टम की सबसे बड़ी कमज़ोरी है। लोगों में जागरूकता की कमी और एक जुट हो कर लड़ने के उत्साह का अभाव है।"

"आकाश यार! तू तो लैक्चर देने लग गया। हमें करना क्या है, यह बता," मोहित ऊबने लगा।

आकाश उत्तेजित हो उठा, "काम की बात आई तो जनाब ऊबने लगे? समस्या बहुत बड़ी है। समाधान का रास्ता सोच-समझ कर चुनना होगा।... हमें दो काम करने हैं...पूरी जानकारी इकट्ठा करना और लोगों को जागरूक

करना।...सवाल बाद में...हम चारों लायब्रेरी में जा कर पुराने अखबारों से सम्बन्धित खबरों को इकट्ठा करें। उन खबरों के आधार पर स्कूल की 'छात्र यूनियन' की ओर से प्रशासन के पास पत्र भेजेंगे कि इतने सालों में समस्या दूर करने के लिए क्या प्रयास किए गए?"

"तुम सोचते हो हमें जवाब मिलेगा," अक्षत ने पूछा।

"बहुत सही प्रश्न पूछा है अक्षत ने," आकांश ने अक्षत की पीठ थपथपाई। "जवाब नहीं मिलेगा, यह निश्चित है। हमारा पत्र अकेले एक छात्र की तरफ से नहीं, छात्र संघ की तरफ से जाएगा। हम अनुस्मारक पर अनुस्मारक भेजते रहेंगे।"

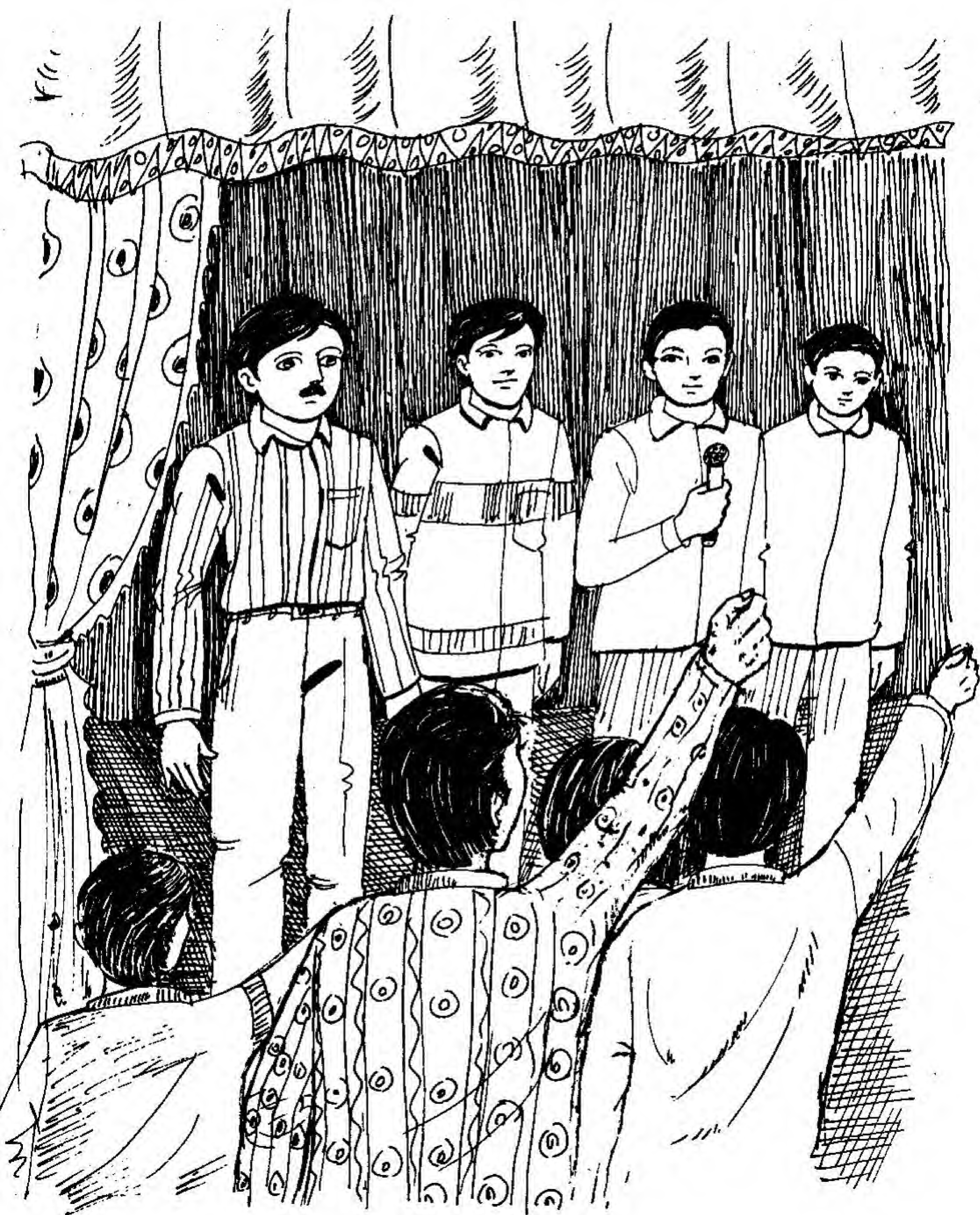
"फिर भी कुछ नहीं हुआ तो...?"

"इसका जवाब है योजना का दूसरा कदम। अपनी योजना और समस्या के पैम्फलैट छपवा कर शिक्षा संस्थानों...स्कूल, कॉलेजों में भेजेंगे। आठ-दस लोगों की टीम बना कर, दो-दो लोग अलग-अलग संस्थानों में जा कर छात्रों को अवगत कराएंगे।...'सर' ने हमारा साथ देने का वायदा किया है। वही स्कूल-कॉलेजों में जाने की इजाजत लेंगे, टीम बनवाएंगे और प्रशासन से जवाब पाने में हमारा सक्रिय सहयोग देंगे।"

बात गम्भीर हो उठी। कुछ देर वहां सन्नाटा छाया रहा। अचानक मोहित मुस्कुरा उठा, "बचपन से पढ़ते आए हैं कि छात्र शक्ति सब से बड़ी शक्ति है। मुझे यकीन है...हम प्रयास करते रहें तो अपनी छात्र शक्ति कुछ कर दिखाएगी।"

उत्साह भरी बात सुन कर सबके चेहरे खुशी से चमकने लगे। चारों हाथ पकड़ कर बोल उठे,...'छात्र शक्ति...जिन्दाबाद।'

इसके बाद की घटनाएं आश्चर्यजनक रूप से घटने लगीं। पहले दो महीने प्रतिक्रिया की रफ्तार धीमी रही। यह समय वातावरण तैयार करने में लगा। उसके बाद तो छात्र-समर्थन का सैलाब आ गया। पूर्ण योजनाबद्ध तरीके से मिलावट के खिलाफ अभियान चल निकला। 'रिमांइडर' जाते रहे। छात्र संघ ने 'कंज्यूमर अवेयरनैस' संस्था से सम्पर्क साधा, विभागीय अफसर से मिलने



का समय मांगा। वहां से कोरे आश्वासन का कसैला स्वाद मिलनेपर टी.वी. पर 'कंज्यूमर फोरम' में आ कर अपना पक्ष रखा।

देखते ही देखते यह मुद्दा अत्यन्त विशाल आकार ले बैठा। पूरा समाज छात्रों के साथ हो लिया। लम्बी लड़ाई चली। पर, छात्रों ने हार नहीं मानी। प्रशासन के हौसले पस्त हो रहे थे। अन्ततः टी.वी. के पर्दे पर सरकारी नुमायन्दे को छात्रों के सामने आ कर स्वीकार करना ही पड़ा कि उनकी मांगें जायज हैं...मिलावट पर रोक लगाना, अपराधी को दण्ड देना उनका धर्म है...।

और इसके बाद 'छात्र शक्ति जिन्दाबाद' के नारों से स्कूल, कॉलेज गूंज उठे।

# बूंद-बूंद से घट भरे

"पापा! मेरे लिए क्या लाए," विभोर ऑफिस से लौटे पापा के कन्धों पर झूलते हुए बोला।

"चॉकलेट," पापा ने चॉकलेट का पैकेट विभोर को थमा दिया।

चॉकलेट देखते ही विभोर खुश हो गया। "थैंक यू पापा! कहता हुआ विभोर चॉकलेट खाता हुआ बाहर खेलने भाग गया।

सात साल का विभोर आजकल के बच्चों से काफी अलग था। मम्मी-पापा की बात मानता, सब से मिल कर खेलता। नख़रे करना, रोना-धोना उसे अच्छा नहीं लगता था। शाम को पापा एक घंटा उसके साथ जरूर खेलते। कभी क्रिकेट, कभी बॉल। कैरम खेलने बैठते तो मम्मी भी खेलने आ जाती। विभोर के दोस्त शाम होते ही उसके घर आ जाते। 'हमारे पापा तो हमारे साथ नहीं खेलते।' विभोर के घर सब का मिल कर खेलना दोस्तों के लिए बड़ा आकर्षण था।

एक दिन, पता नहीं क्या बात हुई कि हमेशा चहकने वाला विभोर गुमसुम-सा हो गया। स्कूल से आ कर चुपचाप खाना खाया और अपने कमरे में आ कर लेट गया।

"तबियत खराब है क्या," मम्मी ने पूछा। "नहीं," कह कर उसने करवट बदल ली। शाम को पापा ऑफिस से आए, तब भी विभोर अपने कमरे से बाहर नहीं निकला। पापा चिन्तित, ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

"विभोर कहां है?"

"अपने कमरे में। लगता है नाराज है।"

"तबियत?'

"तबियत एकदम ठीक है।"

पापा उसके कमरे की तरफ बढ़े तो मम्मी ने कहा, "पहले चाय-नाश्ता कर लो। फिर उसकी कहानी सुन लेना।"

चाय पी कर पापा घूमने के लिए तैयार हो विभोर के कमरे में आए। विभोर को अवाज दी, "क्यों विभोर! अभी तक लेटे हो! हम घूमने जा रहे हैं। चलना है तो झटपट तैयार हो जाओ।"

पापा जानते थे उनके साथ घूमने जाना विभोर को बहुत पसन्द है।

उधर, विभोर पापा की ही प्रतीक्षा कर रहा था। पर, यह क्या? न कोई बात, न सवाल...एकदम तैयार हो कर आ गए! अब तो लेटे रहने से काम नहीं चलेगा। धीरे से चादर हटा कर विभोर उठ खड़ा हुआ।

"उदास हो। तबियत खराब है तो घूमने मत जाओ।" पापा ने तीर फेंका। तीर निशाने पर लगा, "कुछ नहीं...मैं अभी तैयार हो कर आता हूं।"

घूमते समय वह चुप रहा। वरना सवाल पूछ-पूछ कर सिर खा जाया करता था। काफी देर घूम कर पापा पार्क की बैंच की ओर बढ़े, "थोड़ी देर बैठा जाए।" बैठ कर रूमाल से पसीना पोंछते हुए पापा ने कहा, "बहुत चुप हो! क्या बात है?"

"कुछ नहीं," विभोर कसमसाया।

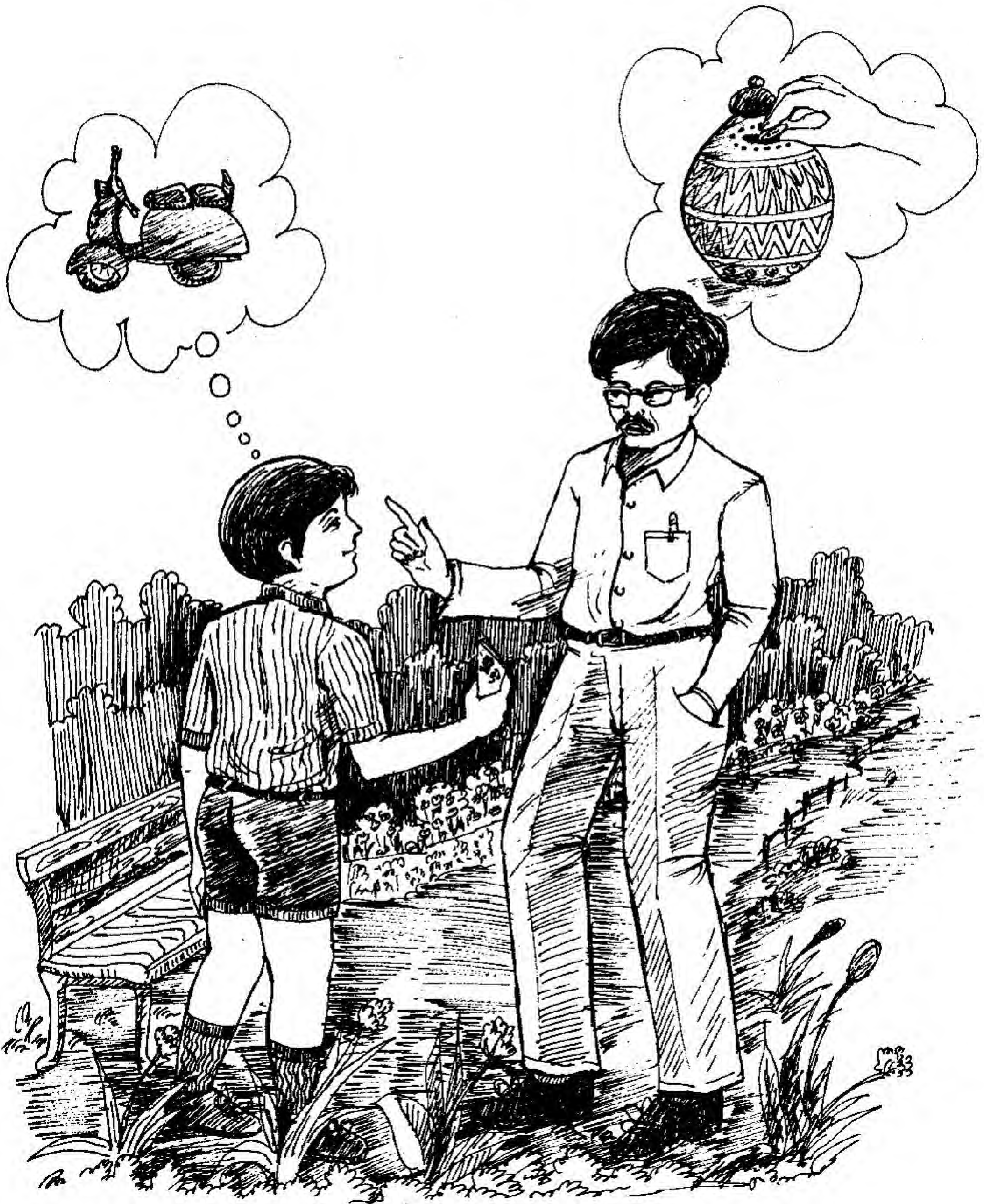
"बात तो जरूर है। हां, तुम बताना न चाहो तो...।"

अब विभोर स्वयं को रोक नहीं सका। रुआंसी आवाज में बोला, "मैं जान गया हूं कि आप मुझे बिल्कुल प्यार नहीं करते," आंसुओं के कारण उसका गला भर गया।

पापा हैरान! यह कैसा आरोप? "मैं तुम्हें प्यार नहीं करता?"

"बिल्कुल नहीं।"

"तुम्हें क्यूं लगा कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता?"



**विभोर** ने झट से आंसू पोंछ लिए, "गप्पू के पापा ने उसे वैसा ही स्कूटर दिलाया है, जैसा आपने मुझे लेने ही नहीं दिया था।"

पापा आश्वस्त हुए, "अच्छा! तो यह बात है?"

"और नहीं तो क्या...अपने जन्मदिन पर गप्पू ने अपने पापा से स्कूटर मांगा, उसके पापा ने फौरन खरीद दिया। मैंने अपने पिछले जन्मदिन पर आपसे स्कूटर मांगा तो आपने इन्कार कर दिया।"

"तुम्हें स्कूटर बहुत अच्छा लगता है?" पापा की आवाज में आशा की झलक दिखाई दी।

विभोर ने जोश से कहा, "बहुत अच्छा।"

"और...वह कार? लाल कार?"

विभोर के मानस में खिलौनों की दुकान में भरे ढेर खिलौनों की छवि कौंध गई, "... पापा! वही न, जिसका हॉर्न भी बजता है और आगे-पीछे दोनों तरफ चलती है?"

"हां, वही!"

"पापा! वह तो सबसे अच्छी लगती है। अगर मुझे वैसी कार मिल जाए तो गप्पू का स्कूटर उसके सामने चीं बोल जाएगा।"

"कार मिल जाए तब स्कूटर तो नहीं लोगे?"

विभोर का दिमाग तेजी से सोचने लगा...स्कूटर पर गप्पू अकेला बैठ सकता है...कार में हम दो लोग बैठेंगे। वैसे भी कार के सामने स्कूटर कहां टिकेगा...?

"पापा! कार! स्कूटर की तरफ मैं देखूंगा भी नहीं।"

विभोर का उतावलापन देख पापा हंस दिए, "चलो, तुम्हारी कार पक्की।"

विभोर हैरान। पापा इतनी जल्दी मान जाएंगे, ऐसी उम्मीद भी नहीं थी।

तभी पापा बोले, "कार तुम अपने पैसों से खरीदोगे।"

विभोर को लगा जैसे पापा ने उसे बहुत ऊंचाई पर पहुंचा कर नीचे धक्का दे दिया। उसकी आंखों में उत्साह के जो दीपक झिलमिलाने लगे थे, वे सहसा बुझ गए, "आपने मुझसे ऐसा मजाक क्यों किया पापा? आप जानते हैं मेरे पास पैसे नहीं है। फिर...,"कहते-कहते उसका गला रुंध गया।

"पैसे हैं नहीं...पर...हो तो सकते हैं।"

"कैसे?"

"हमारी बात ध्यान से सुनोगे तो समझ जाओगे।...तुम्हें हर महीने कितनी पॉकेट-मनी मिलती है?"

विभोर अचकचाते हुए बोला, "तीस रुपये। लेकिन पॉकेट-मनी का कार से क्या सम्बन्ध?"

"इन रुपयों से तुम क्या खरीदते हो?"

विभोर खूब सोच कर बोला, "कभी पैप्सी पी ली, कभी चटपटी इमली खरीद ली। बस ऐसे ही...।"

"तुम्हें कॉपी, पेन्सिल, रबड़ आदि की जरूरत नहीं पड़ती?"

"पड़ती क्यों नहीं? खूब पड़ती है। ये सब चीजें मम्मी दिलाती हैं।"

"और...तुम्हारे कपड़े, जूते, किताबें, बैग ...?"

"आप और मम्मी ये सब चीजें खरीद कर देते हो।"

विभोर कसमसा उठा।...इन सवालों का आखिर कार से क्या लेना-देना? धीरे से बोला, "हां।"

"तो...एक तरह से पॉकेट-मनी फिजूल चीजों पर खर्च कर देते हो?"

"पापा...!"

"ओ के! अब ध्यान से सुनो। यदि तुम फिजूल खर्च बन्द कर के, अपनी पूरी पॉकेट-मनी गुल्लक में डालो तो एक साल में तुम्हारे पास कितने रुपये जमा हो जाएंगे?" विभोर हिसाब लगाने लगा, 'एक महीने में तीस...दो में साठ ...'

तभी पापा ने कहा, "अगर जमा करोगे तो पॉकेट-मनी पचास रुपये मिलेगी।"

"पच्चास...?...दो महीनों में सौ तो बारह महीनों में छः सौ। पापा! एक साल में मेरे पास छः सौ रुपये जमा हो जाएंगे," विभोर के मन में उत्साह मचल रहा था।

"ये रुपये बैंक में जमा कराओ तो साल बाद बैंक भी पचास-साठ रुपये ब्याज के दे देगा।"

विभोर तो जैसे हवा में उड़ा जा रहा था। बिना कुछ काम किए, एक साल में इतना रुपया जमा हो जाएगा।

"पापा! क्या ऐसा हो सकता है?"

"अभी और सुनो...जब भी दादी मां, नानी मां, बुआ, मौसी, चाचू आते हैं, वे भी तुम्हें रुपये दे जाते हैं।"

विभोर अब इस जमा योजना के रस में आकण्ठ डूब चुका था, "उन रुपयों को भी डालो बैंक में।"

पापा ठठा कर हंस पड़े, "बहुत खूब! जनाब को हमारी बात समझ आ गई!"

"पापा! इस तरह मेरे पास एक साल में एक हजार से भी ज्यादा रुपये हो जाएंगे?"

"अगर, तुम एक साल में इतने रुपये जमा कर लो तो कार की कीमत के बाकी रुपये हम दे देंगे।"

"पापा! सच...," विभोर की आंखें खुशी से चमक उठीं।

"फिर तुम शान से अपने दोस्तों को बताना कि तुमने अपनी जमा पूंजी से कार खरीदी है।"

"पापा! यह तो बहुत मजे की बात है।"

"तुमने वह कहावत तो सुनी होगी, 'बूंद-बूंद से घट भरे।' ठीक इसी तरह थोड़ा-थोड़ा पैसा भी नियमपूर्वक जमा करते रहें तो बहुत बड़ी राशि जमा हो जाती है।"

"पापा! मैंने कभी इस बारे में सोचा ही नहीं था।"

धीरे-धीरे तुम बड़ी क्लास में जाओगे। फिर कॉलेज जाओगे। तुम अभी से अपनी जमा योजना शुरू कर दो तो स्कूल जाने के लिए असली साइकिल, कॉलेज जाने पर असली स्कूटर...अपने पैसों से खरीद सकोगे।"

"आप मुझे पहले से यह समझा देते तो अब तक मेरे पास खूब रुपये जमा हो जाते।"

पापा ने स्नेह से विभोर के कन्धे थपथपाए, "जो कल नहीं किया वह आज से शुरू किया जा सकता है। कल सुबह ऑफिस जाने से पहले तुम्हारा खाता खुलवा देंगे।"

"फिर तो इसी महीने से पचास रुपये मिलेंगे न?"

पापा को यकीन हो गया कि विभोर उनकी बात का मर्म समझ गया है, "पचास रुपये। वायदा।"

विभोर की छोटी आंखों में सुनहरे कल के बड़े सपने झिलमिलाने लगे।

# डॉक्टर दीदी!

"मुझे रुपये चाहिए," दोपहर के खाने के समय केतन ने मम्मी से कहा।

"कितने," उसकी प्लेट में चपाती रखती मम्मी पूछ बैठीं।

"तीन हजार।"

"तीन हजार," डोंगे में से सब्जी परोसती मम्मी का हाथ कांप गया।

केतन का पारा गरम होने लगा, "तीन हजार ही मांगे हैं, तीन लाख तो नहीं।"

खाने के समय मम्मी कोई लफड़ा पसन्द नहीं करतीं। आवाज को शान्त रखते हुए सहज होकर बोलीं, "रकम जरूरत पर निर्भर करती है। जरूरत तीन लाख की हो तो तीन हजार से पूरी नहीं हो सकती।"

केतन ने कुछ हैरानी से मम्मी की ओर देखा। उनका शान्त रहना उसकी सोची हुई योजना पर भारी पड़ रहा था। उसका ख्याल था...सुनते ही वे झल्लाएंगी। ऐसे में अपना रौद्र रूप दिखाना आसान हो जाता है। शान्त मम्मी से वह कैसे उलझे...? बिना ऊंची किए, धीमी आवाज में बोला, "दोस्त के साथ घूमने जा रहा हूं।"

"केतन! टुकड़ों में बताने से बात समझ नहीं आती। पूरी बात बताओगे, तभी समझूंगी।"

मम्मी अभी भी शान्त! केतन मन ही मन झल्ला रहा था, 'मम्मी उसका काम मुश्किल क्यों कर रही हैं? वे तनिक-सा ऊंचा बोलें तो वह चिल्ला

कर उन पर हावी हो सकता है।' थोड़ी देर चुप रह कर उसने बताया कि अभी ग्यारहवीं की परीक्षा खत्म हुई है, स्कूल खुलने में बहुत दिन हैं...वह एक दोस्त के साथ पन्द्रह दिन के लिए लेह घूमने जा रहा है।

"लेह! पन्द्रह दिन! केतन! तीन हजार रुपये तो कम पड़ेंगे...या...तुम्हारे दोस्त का वहां कोई घर-वर है?"

यह कतई अप्रत्याशित था। केतन खाना भूल गया। इतनी आसानी से पैसा मिल जाएगा, उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। मम्मी का रुख इतना अनुकूल होगा, यह जानता तो और बड़ी रकम मांग लेता। आंखों में आशा की चमक से उसने मां की ओर देखा, "ना...ना...कोई घर-वर नहीं है। पर्यटन विभाग के सस्ते होटल होंगे, वहीं ठहरेंगे। ऐसा करो, तुम पांच हजार रुपये दे दो।"

"कब जाना है?"

"परसों।"

"सब तय हो गया?"

"हां।"

मम्मी की आवाज अचानक बदल गई, "तुम घर में रह रहे हो या होस्टल में? घर में रहते हुए सैर-सपाटे की योजना को अंतिम रूप देने से पहले सब से बात की जाती है। घर में मां-बाप हैं, बड़ी बहन है। किसी से पूछने की जरूरत नहीं समझी? बस, हुकुम सुना दिया, जैसे कोई रिश्ता ही नहीं है।"

केतन सकपका गया। अचानक उससे कुछ कहते नहीं बना। मम्मी ने ही कहा, "तुमने पापा से वायदा किया था कि स्कूल खुलने से पहले तुम कमर्शियल आर्ट की कक्षाओं में भाग लोगे। तुम कमर्शियल आर्ट करना चाहते हो न?

"वह तो यूं ही कह दिया था," उसका ढीठपन वापिस आने लगा।

"पापा की बात को यूं ही हवा में उड़ा दिया और उम्मीद करते हो कि तुम्हारी आवारागर्दी के लिए वे फौरन रुपया निकाल कर दे दें?"

केतन की आंखों में अवज्ञा का रंग लहराने लगा, "रुपये मैं पापा से नहीं, तुमसे मांग रहा हूं।"

"कमाई तो पापा की है।"

"वे कमाते तो हमारे लिए ही हैं।"

"कमाते हैं जिन्दगी जीने के लिए। इधर-उधर फेंकने के लिए नहीं। ...और फिर...इस महीने रुपया निकालना मुश्किल हो जाएगा। नेहा का 'प्रोफैशनल कैम्प' लग रहा है। उस पर भी खर्च होगा।

"नेहा...नेहा...नेहा," केतन प्लेट सरकाते हुए जोर से चिल्लाया, "तुम्हारी लाड़ली बेटी जब मांगे, उसके लिए पैसे हर वक्त उपलब्ध। मेरी घर में कोई कद्र ही नहीं है।"

"खबरदार! ऊंची आवाज में मत बोलना। तुम्हारी बहन अपनी मेहनत के बल पर डॉक्टर बनी है। डॉक्टरी की पढ़ाई के साथ-साथ घर में मेरे साथ काम में हाथ बंटाती है, पापा का ख्याल रखती है। और तुझे तो छोटे बच्चे-सा प्यार करती है।"

"दीदी की तारीफ सुन-सुन कर मैं पागल हो जाऊंगा।...डॉक्टर ही बनी है न? हजारों लड़कियां हर साल डॉक्टर बनती हैं। उसने कौन-सा तीर मार लिया," कहते-कहते वह पैर पटकता घर से बाहर चला गया।

एक ही परिवेश में पलने-बढ़ने के बावजूद इन दोनों के स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर था। नेहा में वे सब गुण थे जो एक सन्तान में होने चाहिए। केतन ठीक इसके विपरीत था। किसी काम में उसका मन नहीं लगता था। बातें बड़ी-बड़ी, पर मेहनत करने का जिगरा नहीं। केशव वर्मा और शालिनी जब दिल्ली आए थे तो नेहा दो साल की थीं। चार साल बाद केतन का जन्म हुआ। बचपन में उसकी प्रखर बुद्धि बात-बात में झलकती थी। नेहा उस पर जान छिड़कती।

गुस्से में पांव पटकता हुआ केतन घर से बाहर चला गया और शालिनी वहीं बैठी जिन्दगी के पृष्ठ पलट कर देखने लगी।...केतन शायद आठ साल का रहा होगा जब केशव ने दूसरी कम्पनी में कार्य भार संभाला। नई कम्पनी, नया काम, ऊंची पोजीशन, ढेर सारी जिम्मेदारियां। घर आने का कोई समय

नहीं। बच्चों के साथ जो वक्त गुजरता था, वह दफ्तर में गुजरने लगा। नेहा चौदह-पन्द्रह साल की थी, समझदार थी। पर, शायद केतन पापा की मजबूरी नहीं समझ पाया।

''पापा! कल आप मुझे अप्पूघर ले जाएंगे। आपने 'प्रॉमिस' किया था।''

''कल? कल नहीं बेटे! कल हफ्तर में जरूरी मीटिंग है।''

''पापा! मेरा क्रिकेट सैट लाए?''

''ओह! काम में एकदम भूल गया। कल...नहीं, परसों जरूर ला देंगे।''

''पापा! आप हमारे स्कूल नहीं आए? सब बच्चों के मम्मी-पापा आए थे। मेरी सिर्फ मम्मी आईं।''

अगले तीन-चार साल पिता-पुत्र के बीच इसी तरह का रिश्ता चलता रहा। प्रायः ऐसे वार्त्तालाप के बाद केशव अपनी मजबूरी और गलती के अहसास से छुटकारा पाने के लिए केतन को रुपये पकड़ा देते। शालिनी प्रतिवाद करती, ''उसकी आदतें बिगड़ जाएंगी...देखना...वह तुम पर हावी होता जाएगा।''

उधर, नेहा पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य 'एंक्टीविटीज' में भी चमक रही थी। घर में, अक्सर दोनों की तुलना हो जाती। शालिनी अक्सर केतन से कहती, 'दीदी को देख, हर काम मन लगा कर करती है। एक तुम हो कि जब देखो मटरगश्ती सूझती है।'

समय के साथ-साथ यह तुलना केतन को चुभने लगी, ''इस घर में दीदी ही सब कुछ हैं...मैं तो फालतू हूं।''

शालिनी देख रही थी कि केतन उससे ऊंची आवाज में बात नहीं कर सकता था। पर, पापा की अवज्ञा खुल कर करने लगा। उसने उसे बिठा कर समझाना चाहा, पापा के काम की अहमियत जतानी चाही। पर वह सुनना ही नहीं चाहता था।''

अब पापा-बेटे के बीच सिर्फ पैसों का रिश्ता रह गया था। पापा जो कहते, केतन ठीक उसके विपरीत करता। पढ़ाई में कुशाग्रबुद्धि था। पर, बैठ कर पढ़े तो सही।

शालिनी दोनों हाथों से सिर थामे बैठी सोचती रही, 'आखिर किसे दोष दूं?'

तीसरे दिन केतन पापा की अलमारी से चार हजार रुपये निकाल कर चला गया। एक पर्चा छोड़ गया, 'ट्रिप पर जा रहा हूं।'

इन्हीं दिनों नेहा को 'प्रोफेशनल ट्रेनिंग' के लिए जाना था। एम.बी.बी. एस. करने के बाद किसी गांव में जा कर एक महीना काम करना अनिवार्य था। चार लड़के-लड़कियों का एक ग्रुप बना। इस ग्रुप को मनाली से आगे के गांव में जाना था। नेहा अपने तीन साथियों के साथ गांव में पहुंच गई। ये नए डॉक्टर गांव की हालत देख स्तब्ध थे। आजादी के पांच दशक बीत जाने के बाद भी गांव में न ढंग का अस्पताल, न प्रशिक्षित डॉक्टर। चारों जी जान से गांव वालों की बीमारियों से जूझने लगे। बदले में उन्हें गांव वालों का ढेर-सारा प्यार मिला।

एक दिन खबर आई कि दूर पहाड़ पर कोई दुर्घटना हो गई है। घायलों को लाया जा रहा है...ऑपरेशन की जो भी सुविधा उपलब्ध हो, तैयारी रखी जाए।

झटपट, गांव वालों के सहयोग से घायलों की देखभाल की तैयारी की गई। थोड़ी देर में खबर मिली कि...दो-तीन लोग पहाड़ से फिसल गए। आंधी से उखड़ा पेड़ उनके रास्ते में आ गया और वे उसमें अटक गए। किस्मत अच्छी थी जो चरवाहे ने देख लिया। वरना, खड्ड इतनी गहरी है कि गिरने पर हड्डी-पसली का भी पता न मिलता।

पहाड़ी मजदूर दो घायलों को पीठ पर लादे गांव में लाए। उनका चेहरा देखते ही नेहा सिहर उठी। उसके सामने केतन और उसका मित्र बेहोश पड़े थे। केतन के माथे पर गहरी चोट आई थीं। उसके दोस्त की टांग पर घुटने से नीचे, बुरी तरह मांस फट गया था। वैसे जान को खतरा नहीं था।

संयोग ऐसा पड़ा कि ऐसे समय में ग्रुप के दो डॉक्टर एक सप्ताह के लिए पास के गांव में गए हुए थे। नेहा और उसके साथी डॉक्टर ने घाव साफ किए, टांके लगाए, वे दवाइयां जो वहां उपलब्ध नहीं थीं, एक आदमी को मनाली भेज कर मंगवाईं।

नेहा ने साथी डॉक्टर को विश्वास में ले कर केतन के बारे में उसे सब कुछ बताते हुए कहा, "उसे यह मत बताना कि मैं नेहा हूं। जब वह होश में आ जाए तो तुम ही उसे 'अटेंड' करना...।"

अगले दिन दोनों को होश आया। खून काफी बह गया था। तीसरे दिन कमजोरी कुछ दूर हुई। डॉक्टर ने उन्हें बताया कि वे किस हालत में यहां लाए गए थे और यह भी कि अगर यह लेडी डॉक्टर न होती तो तुम दोनों राम को प्यारे हो गए होते।

केतन की पहली प्रतिक्रिया थी, "एक महिला डॉक्टर ने मुझे बचाया?"

होश में आने के बाद दो दिन तक नेहा उसके सामने नहीं आई। वह जब उस लेडी डॉक्टर के बारे में पूछता, तो जवाब मिलता, 'व्यस्त हैं।' दो दिन और बीत गए। अगले दिन सुबह डॉक्टर ने कहा, "आज वह लेडी डॉक्टर तुम्हें देखने आएंगी।"

केतन मन ही मन उसका कृतज्ञ था। सोच रहा था कैसे उसे धन्यवाद देगा। डॉक्टर कमरे में आईं। केतन चारपाई पर उठ कर बैठ गया।

"कैसे हो केतन?"

केतन तो मानो पलक झपकाना ही भूल गया, 'दीदी और यहां?'

"मुझे पहचानते हो या...याददाश्त खो बैठे हो" नेहा ने आगे बढ़ कर उसका माथा छुआ, "आज बुखार नहीं है।"

इन कुछ एक क्षणों में मानो केतन के मन-मस्तिष्क में आंधी उमड़ चली ...'मैं दीदी से कितना चिढ़ता था, उन्हें तंग किया करता, उनकी कोई बात न मानता था...मुझे यही लगता था कि दीदी को कुछ आता-जाता नहीं...बस नाम की डॉक्टर हैं...मम्मी-पापा और मुझ पर रौब जमाने के लिए ढोंग कर रही हैं...उसी दीदी ने मुझे बचाया। गांव वाले उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते। ...मैं अभागा अपने निठल्लेपन को ढकने के लिए उन्हें उल्टा-सीधा बोलता रहता था। अब मैं दीदी से आंख नहीं मिला सकता...।' उसकी विचार-शृंखला खत्म ही नहीं हो रही थी। नेहा सोचने लगी कि शायद केतन उसे यहां देख



खुश नहीं है। उसके माथे से हाथ हटा वह जाने लगी; तभी केतन हो होश आया। झपट कर नेहा का हाथ पकड़ आंखों से लगाकर रो दिया। उसके आंसू थम ही नहीं रहे थे।

नेहा सब कुछ समझ रही थी। इन आंसुओं के साथ मानो वह अपना सारा अपराध-बोध बहा देना चाहता था।

"मुझे माफ कर दो दीदी," बड़ी कठिनाई से ये शब्द उसके मुख से निकले।

नेहा ने उसको गले लगा लिया, "किस चीज की माफी मांग रहा है तू?"

"दीदी! मैं भटक गया था। तुम मेरे बारे में सब जानती हो। तुमने मेरी आंखें खोल दीं...। दीदी! आज तुम्हारा भाई तुम्हें वचन देता है कि वह तुम्हें कुछ बन कर दिखाएगा।"

बहते आंसुओं से नेहा ने उसे बांहों में भर लिया।

# बुरे को नहीं, बुराई को दूर करो

रुनझुन ने धीरे-धीरे आखें खोलीं। आंखें घुमा कर इधर-उधर देखा और झट से उठ कर बैठ गई..."वह स्वर्ग में आ गई है?" मतलब कि वह मर चुकी है। इतने गहरे गड्ढे में गिर कर बचा भी तो नहीं जा सकता। गिरना भी क्या ...उसे गिराया गया था। जो हो, अब वह स्वर्ग में है। यह खूबसूरत कमरा, नरम गुदगुदा बिस्तर, सफेद झक्क दीवारें, छत से लटके जगमगाते फानूस, चारों तरफ फैली धीमी-धीमी सुगन्ध, पूर्ण शान्ति। किताबों में स्वर्ग की कुछ ऐसी ही परिभाषा पढ़ने को मिलती है। हां, खिड़की के बाहर रंग-रंग के फूलों की बेलें लटक रही हैं। 'बाहर चल कर देखती हूं,' यह सोच कर वह पलंग से उतरी।

तभी उसे अपने पीछे किसी के आने की आहट सुनाई दी। वह फुर्ती से घूम गई। पीछे अप्सरा-सी सुन्दर एक लड़की खड़ी थी। रुनझुन को होश में देख लड़की मुस्कुराई, "तुम जाग गईं?" जैसे जलतरंग बज उठा हो।

"जाग गई का क्या मतलब? मैं तो मर चुकी हूं। मर कर स्वर्ग में आई हूं...तुम कौन हो?"

लड़की खिलखिला उठी, मानो, नन्ही-नन्ही घंटियां बज उठी हों, "तुमसे किसने कहा कि तुम मर गई हो?"

"यह सुन्दर कमरा, यह सुगन्ध, अप्सरा-सी सुन्दर तुम। ऐसा तो स्वर्ग में ही होता है। वरना, मैं तो गहरे गड्ढे में गिरा दी गई थी।"

"ओह! तो यह बात है," जैसे लड़की को रहस्य समझ आ गया हो, "हम यही सोच रहे थे कि तुम गिरी कैसे?...कुछ पूछने से पहले मैं बता

दूं...मेरा नाम मालविका है। तुम इस समय पाताल लोक में हो। मैं यहां की राजकुमारी हूं। तुम जहां गिरी थीं, वह गड्ढा पाताल लोक तक आता है। वास्तव में हम पाताल लोक की लड़कियां उसी रास्ते से धरती पर जाती हैं। जिसने तुम्हें गिराया, उसने अनजाने में ही तुम्हें हमारे पास भेज दिया। अच्छा बताओ, तुम्हारा नाम क्या है?"

"रुनझुन!"

"प्यारा नाम है। रुनझुन! तुम थकी हो। पहले नहा-धो कर कुछ खा-पी लो। फिर बातें करेंगे," कह कर मालविका ने ताली बजाई।

दो परिचारिकाएं अन्दर आईं।

"यह रुनझुन है। इसे स्नान करा, नए वस्त्र पहना, भोजन करा दो।"

स्कूल का वार्षिकोत्सव। सांस्कृतिक कार्यक्रम के बाद वार्षिक परीक्षा के परिणामों की घोषणा हुई। पढ़ाई, वाद-विवाद, अनुशासन तथा खेलकूद में आगे रहे बच्चों को खुद प्रदेश के मुख्यमन्त्री ने पुरुस्कार बांटे।

सातवीं कक्षा में प्रथम रुनझुन,...सर्वश्रेष्ठ अनुशासित छात्रा-रुनझुन...बॉस्केट बॉल (जूनियर) टीम लीडर रुनझुन। बार-बार रुनझुन नाम पुकारे जाने पर सारा हॉल तालियों से गूंज उठा। रुनझुन के मम्मी-पापा गौरवान्वित थे। स्कूल मुख्याध्यापक और कक्षा अध्यापिका सोच रही थी कि अगले साल, बोर्ड परीक्षा में रुनझुन स्कूल का नाम रोशन करेगी।

प्रसन्नता व शुभकामनाओं के इस सैलाब में दो चेहरे ईर्ष्या से दग्ध हुए जा रहे थे। दीपांकर और शीना से जब तालियां और बर्दाश्त नहीं हुईं तो दोनों हाल से बाहर आ गए, "इसका जल्दी कोई इलाज करना होगा। मैं ईर्ष्या से जली जा रही हूं। दीपू! मुझसे रुनझुन का यह मान-सम्मान नहीं देखा जाता।"

दीपांकर ने शीना का कन्धा थपथपया, "चिन्ता मत कर। दीपू के पास हर बीमारी का इलाज है।"

रुनझुन और शीना पहली कक्षा से साथ-साथ पढ़ रही थीं। बच्चों की दोस्ती ने दोनों परिवारों में भी मैत्री सम्बन्ध बना दिए। रुनझुन पढ़ाई में ही

नहीं अतिरिक्त गतिविधियों में भी आगे रहती। कक्षा में प्रथम वही आती। तीसरी-चौथी कक्षा तक शीना रुनझुन की वाहवाही में सबसे आगे रहती, 'आखिर मेरी ही तो सहेली है।'

फिर पता नहीं क्या हुआ, पांचवीं का परिणाम आने के बाद वह अचानक सुस्त हो गई। 'हम दोनों एक जितना पढ़ते हैं...फिर रुनझुन ही हमेशा प्रथम क्यों आती है? मैं उससे किस बात में कम हूं? टीचर्ज जरुर उसके साथ पक्षपात करती हैं।'

और इस प्रकार ईर्ष्या की आग की पहली चिंगारी उसके अन्दर सुलग उठी।

ऊपर से देखने में सब पहले जैसा था। पर, यह भी सच है कि अब शीना को रुनझुन की वाहवाही फूटी आंख नहीं सुहाती थी। छठी कक्षा में एक नया लड़का आया दीपांकर। अमीर बाप का बिगड़ैल बेटा। पढ़ाई-लिखाई में उसका मन नहीं लगता। शरारतें और दूसरों को तंग करना उसके शौक। पता नहीं उसे कितनी पॉकेट मनी मिलती...जेब पैसों से भरी रहती। पैसों का रौब सब पर झाड़ता। हां, एक चीज भगवान ने उसे दिल खोल कर दी थी ...आकर्षक व्यक्तित्व। गोरा रंग, तीखे नाक-नक्श और अच्छी कद-काठी।

इन दिनों शीना अन्दर की आग से झुलस रही थी। उसकी नजर दीपांकर पर पड़ी। 'वाह! क्या हैंडसम लड़का है।' वह उससे दोस्ती करना चाहती है, दीपांकर का अहम् फूल कर कुप्पा हो गया।

ग्यारह-बारह साल की उम्र का मोड़ नाजुक होता है। बचपन धीरे-धीरे साथ छोड़ रहा होता है...झपटती चली आती किशोरावस्था का मन आकाश तक पींग बढ़ा कर तारे तोड़ लाने की हिम्मत से सराबोर हो उठता है। अनुभवों की कमी के कारण यथार्थ की धरती को मन समझ नहीं पाता। ऐसे में, बिना सोचे-समझे उठाया एक भी गलत कदम बहुत भारी पड़ता है। इसी लड़खडा़ती मन:स्थिति में शीना ने दीपांकर को थामा। देखो, आगे क्या होता है!

दीपांकर ने बहुत जल्दी शीना के मन में सुलगती ईर्ष्या को भांप लिया। उसे भी रुनझुन से चिढ़ हो चली थी। क्योंकि, रुनझुन में वे सब गुण थे

जो दीपांकर अपने में चाहता था और, उनके लिए मेहनत करने के लिए कतई तैयार नहीं था। किसी ऊंचे उठते को गिरते देख, ऐसे लोगों को बहुत तृप्ति मिलती है। दीपांकर के पास तो शीना रूपी जबरदस्त मोहरा था। वह शीना की ईर्ष्या अग्नि में धीरे-धीरे घी डालने लगा।

"बस्स!...अब और नहीं...मुझसे नहीं सहा जाता। चारों तरफ रुनझुन, रुनझुन। जैसे, स्कूल में और कोई लड़की ही नहीं है," शीना गुस्से से लालपीली हो रही थी। "और तू?" उसने दीपांकर का कॉलर पकड़ लिया, "क्या किया तूने अब तक? सिर्फ तमाशा देख रहा है। मैं समझ गई... तुझ से कुछ होने वाला नहीं...पोंगा है तू...पोंगा।"

शीना का गुस्सा देख दीपांकर सहम गया। कॉलर छुड़ाते हुए बोला, "मेरी योजना बहुत जल्दी तैयार हो जाएगी। पर तू...रुनझुन से पहले की तरह ही पेश आना...उसका विश्वास खत्म ना हो।"

दीपांकर अपने पापा के साथ अक्सर घूमने जाता था। शहर से बाहर। हरा-भरा जंगल। पास बहती नदी। पिकनिक के लिए अच्छी जगह है। एक दिन दीपांकर ने देखा झाड़ियों के बीच एक गड्ढा है। झांक कर देखा। अन्दर कुछ दिखाई नहीं दिया। लगा, इतना गहरा जरुर है कि अन्दर कोई गिर जाए तो मदद लिए बिना बाहर नहीं आ सकता। रुनझुन! दिमाग में एक बिजली सी कौंधी, 'रुनझुन इस गड्ढे में गिर जाए...तो...बाहर निकलने के लिए रोएगी ...चिल्लाएगी...गिड़गिड़ाएगी...।' रोती गिड़गिड़ाती रुनझुन की कल्पना उसे बहुत अच्छी लगी। क्लास की सबसे मेधावी लड़की उसके सामने गिड़गिड़ाए, इससे बड़ा आनन्द भला क्या होगा।

उसके दिमाग में एक योजना ने जन्म लिया...'चार-पांच लोग वहां पिकनिक पर जाएं...किसी बहाने से रुनझुन गड्ढे में गिर जाए...फिर...सबके सामने वह बाहर निकलने के लिए गिड़गिड़ाए...।...पर...गड्ढे में गिरे कैसे?

गुलाबी कमल!

दीपांकर की बांहें खिल गईं। सब जानते थे कि रुनझुन गुलाबी कमल के फूल की दीवानी थी। दिख जाए तो लिए बगैर नहीं मानेगी। गड्ढे को

पत्तों से ढक कर वहां गुलाबी कमल रख दिया जाए...वह लेने जाएगी ही और बस्स...।'

दीपांकर ने शीना को अपनी योजना समझाई।

छुट्टी के दिन पांच-छः छात्र-छात्राएं पिकनिक के लिए पहुंचे। दीपांकर पहले दिन गड्ढे के ऊपर पत्ते आदि रख आया था। आज, सबकी नजर बचा कर साथ लाया गुलाबी कमल पत्तों पर रख दिया। खाना खा कर सब आराम से बैठे तो रुनझुन की नजर कमल पर पड़ी, "ओ...गुलाबी कमल। दीपू! कमल ला दे ना!"

"मुझे सुस्ती आ रही है। तू ही ले आ।"

रुनझुन कमल लाने उठी। उठते-उठते उसने देखा दीपांकर और शीना ने आंखों ही आंखों में कुछ इशारा किया और अजीब-सी चमक उनकी आंखों में चमक उठी, 'आजकल शीना ने दीपांकर के साथ बहुत गहरी दोस्ती गांठ रखी है। पता नहीं, दोनों क्या खुसर-पुसर करते रहते हैं?'

"बचाओऽऽऽऽ," पत्तों पर पैर पड़ते ही रुनझुन गड्ढे में जा गिरी। सब उस तरफ दौड़े। गड्ढे में शान्ति छाई थी। न रोना, न गिड़गिड़ाना। रुनझुन को हुआ क्या?

रुनझुन! सबने आवाज दी।

दीपांकर और शीना के चेहरे पीले पड़ गए। एक लड़के के पास टॉर्च थी। देखा, रुनझुन गड्ढे में बेहोश पड़ी थी।

क्या मर गई?

"हे भगवान! इसे जिन्दा रखना... यह मरे ना...," दीपांकर मन ही मन प्रार्थना कर रहा था। सबने मिलकर रुनझुन को बाहर निकाला।

"इसकी सांस चल रही है। बेहोश हुई है। हमें जल्दी इसे अस्पताल ले जाना चाहिए।"

अस्पताल जाती बेहोश रुनझुन एक सपना देख रही थी। सुन्दर सपना। पाताल की राजकुमारी मालविका से दोस्ती का सपना। नहा-धो कर, नए वस्त्र

पहन वह मालविका के साथ उपवन में बैठी बातें कर रही है। रुनझुन की बातें सुन मालविका ने कहा, "पता नहीं, ऐसे गन्दे लोग क्यों होते हैं? पर, ऐसे लोगों को सबक जरुर सिखाना चाहिए। तुम मार्शल-आर्ट सीख लो। जूडो ...कराटे।"

"कराटे सीख कर क्या होगा?"

"जो बुरा है, उसकी पिटाई करना, बदला लेना नहीं है। उसकी बुराई को मार कर खत्म कर दिया जाए, समझो बदला ले लिया। जूडो, कराटे सीख कर तुम दीपांकर पर भारी पड़ सकती हो, उसे नीचा दिखा कर उसकी गलती का अहसास करा सकती हो।"

"पर कैसे?"

मालविका ने उसे प्यार से थपथपाया, "वक्त अपने आप तुम्हारे सामने अवसर उपस्थित कर देगा। तुम समझ जाओगी।...अभी तो तुम्हें धरती पर भेजने का इन्तजाम करती हूं।"

रुनझुन को होश आ रहा है...अस्पताल के कमरे में उसकी आंखों में होती हरकत देख डाक्टर की जान में जान आई।

"बाय मालविका," अस्फुट स्वर में बड़बड़ाते हुए रुनझुन ने आंखें खोल दीं।

कुछ दिनों में स्वस्थ हो कर रुनझुन ने स्कूल जाना शुरु कर दिया। वह देख रही थी कि दीपांकर और शीना कुछ सहमे, कुछ झेंपे से थे। रुनझुन यह तो समझ गई थी कि पत्तों पर कमल का फूल रखा गया था और इस योजना में शीना व दीपांकर दोनों की मिलीभगत थी। पर क्यों?

उसे सपने की मालविका की याद आई, "जल्दी मत करना...अवसर अपने आप आ जाएगा।"

रुनझुन ने मार्शल-आर्ट की क्लास में जाना शुरु कर दिया। छः, सात दिनों में वह काफी सीख गई थी।

दीपांकर कुछ दिन तो असहज रहा कि पता नहीं रुनझुन कितना जानती है? पर, जब वह पूर्ण सामान्य व्यवहार करती रही तो उसका डर जाता रहा।

वह अब फिर अपने पुराने स्वभाव में लौट आया। एक दिन दीपांकर रुनझुन के सामने अंट-संट बोलने लगा। रुनझुन अब किसी से डरने वाली नहीं थी। उसने कहा, "दीपू! इस दफा गुलाबी कमल कहां रखोगे?"

दीपांकर सन्न! उसके चेहरे का रंग उड़ गया, 'यह कितना जानती है?'

उसने शीना को बताया। वह भी सकपका गई, "कुछ सोचना होगा।"

वार्षिक स्पोर्ट्स-डे के खेलों में भाग लेने के लिए छात्र-छात्राएं नाम लिखा रहे थे। रुनझुन ने कबड्डी में भी नाम लिखवाया। कुछ सोच कर दीपांकर विरोधी टीम में आ गया। उसके तीन साथियों ने भी नाम लिखा लिया। उसने सोचा...'एक दिन प्रैक्टिस के बहाने रुनझुन को रोक, साथियों के साथ उसकी मरम्मत कर देंगे। स्पोर्ट्स डे तक उठने के काबिल नहीं रहेगी।

स्कुल खाली हो गया। ये लोग फील्ड में पहुंचे। रुनझुन ने देख लिया कि शीना ऊपर बरामदे में बैठी है।

कबड्डी...कबड्डी...करता एक लड़का रुनझुन के पाले में आया। दो-तीन बारी के बाद अचानक चारों लड़के रुनझुन के पाले में घुस आए। वे पहला प्रहार करते, इसकी तो नौबत ही नहीं आई। रुनझुन ने उछल कर दो लड़कों को टांगों से मारा। दो को हाथों से पटक दिया। तीन-चार मिनट की हाथापाई में ही चारों लड़के चित्त। रुनझुन दीपांकर को कॉलर से पकड़ कर दूर खेंच ले गई।

"तुम्हारी सारी करतूत मुझे याद है। बता दूं सारे स्कूल को कि मुझे गिराने के लिए तुमने गड्ढे को पत्तों से ढक कर कमल रख दिया था। मुझे यह भी पता है...तुमने मुझे आज स्कूल में क्यों रोका? सारे स्कूल के सामने सब कुछ बता दूं तो तुम्हारे पिता का पैसा भी तुम्हें बचा नहीं सकेगा।

मैं बुरे के साथ बुराई करने में यकीन नहीं रखती। बुराई को खत्म करना ही उचित है। सवाल यह है कि बुराई की क्यों? मेरी तुम्हारे साथ कोई लड़ाई नहीं। मनमुटाव नहीं। आज तुम बताओगे तुमने ऐसा क्या किया?

दीपांकर को चुप देख रुनझुन ने उसकी गर्दन पर जरा-सा दबाव बढ़ाया। वह चिल्ला उठा। फिर तो उसकी जबान तोते की तरह खुल गई।



"शीना?" हैरानी से रुनझुन का मुंह खुला का खुला रह गया। "वह मुझसे ईर्ष्या करती है? ना...तुम झूठ बोल रहे हो।"

तब तक शीना भी वहां आ पहुंची थी। उसके मन का चोर महीनों से उसे चैन से जीने नहीं दे रहा था। रोते-रोते उसने सब कह डाला।

"तू...मेरे बचपन की सबसे प्यारी सहेली...बहन जैसी...तू मुझसे जलने लगी?...और तुम दीपांकर? भगवान ने इतना सुन्दर रुप दिया। पर, मन तुमने एकदम काला बना लिया। पिता के पैसे पर कब तक ऐश करोगे? कुछ कर के दिखाओ। लोग खुद तुम्हारी सराहना करेंगे। तुम्हारा फर्ज था शीना को समझाते...।"

दीपांकर और शीना फूट-फूट कर रो रहे थे। दीपांकर ने कहा, "रुनझुन! तुमने मेरी आंखें खोल दीं। इतना कुछ हो जाने, सब जानने पर भी तुमने किसी से कुछ नहीं कहा कि कहीं मेरा जीवन बरबाद न हो जाए।...घर में मां नहीं है...पिता का लाड़ और ढेरों-ढेर पैसा...मुझे समझाने-संभालने वाला कोई था ही नहीं...।"

आंसू बहे। गिले शिकवे हुए। माफी मांगी। कुछ देर बाद अजीब नजारा देखने को मिला। खेल के मैदान में, कुछ देर पहले जो एक दूसरे को बर्बाद कर देने का संकल्प ले कर आए थे, अब मित्रों की तरह बांहों में बांहें डाले घर जा रहे थे।

लेखिका मृदुला हालन द्वारा लिखित पुस्तक *छोटी आंखों का बड़ा सपना* में नौ कहानियां संकलित की गई हैं जो बच्चों के सपनों के साथ-साथ अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों के भविष्य के लिए बुने गए सपनों को भी अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। पुस्तक की सभी कहानियां बच्चों को जीवन में सच्चाई, ईमानदारी और नैतिकता के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के साथ-साथ उनका स्वस्थ मनोरंजन भी करती हैं।



प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

ISBN: 81-230-1123-7

मूल्य: 40.00 रुपये